# लय हरापन की

शान्ति सुमन

# लय हरापन की

शान्ति सुमन

समीक्षा प्रकाशन
दिल्ली/मुजफ्फरपुर

ISBN : 978-93-84722-11-1

प्रथम संस्करण
2015

सर्वाधिकार ©
डॉ. शान्ति सुमन

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे.के.मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)–842001
फोन : 09334279957, 09905292801
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www : samikshaprakashan.blogspot.com

दिल्ली कार्यालय
आर-27, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली–92
मो.–08527482726

पृष्ठ-सज्जा
सतीश कुमार

मुद्रक
बी०के० ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
250.00 (दो सौ पचास रुपये)

---

*Lay Harapan Kee*

**by Shanti Suman** **Rs. 250.00**

**पति को**
जब वे थे
अपना पहला गीत-संग्रह
**'ओ प्रतीक्षित'** (1970)
समर्पित किया था

अब वे नहीं हैं—(20 जनवरी 2013)
उनको ही—
**'लय हरापन की'**

# पौष शुक्ल नवमी

रात पौष शुक्ल नवमी की
लगती कारी है
दिन कितना भारी है

खुलते नही पंख चिड़ियों के
शोर हवाओं में
कलियों की अधखिली पंखुरी
नींद लताओं में
मन ही नहीं लगे अपना सा
कैसी लाचारी है !

शब्द सुनाई पड़े थे कुछ
आँखें खुली हुईं
माथे की उजली शिकनों में
चाँदी धुली हुई
साँसों की आवाजाही में
इच्छा सुकुमारी है

रुकी हुई धड़कन में भी हैं
टँकते दुख घर के

मुख पर इस बेचैन रात के
दाग सिन्दुर के
उड़ता यान हवा का कैसी
यह अलग सवारी है !

देती हुई गवाही आँखें
तिरपन सालों की
इतने लाख यतन से सींची
हरियर डालों की
ढ़लते सूरज की किरनों से
दुनिया तो हारी है।

■

21.01.2013

# गीत के एक प्रतिसंसार की रचना

हिन्दी कविता के विकास का आदिम चरण गीत के रूप में ही गतिशील हुआ, यह असंदिग्ध सत्य है। इसलिए स्वच्छन्दतावादी कविता-धारा की निजता के साथ ही साथ सामूहिकता या सामाजिक सरोकारों की अभिव्यक्ति उसमें निरन्तर बनी रही। फिर वह चाहे लोक-भाषा की कविता हो या आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली की कविता। साठोत्तर पीढ़ी ने गीत को जो नवगीत और जनगीत के रूप में—नए रूप में ढाला, उसके महत्वपूर्ण रचनाकारों में एक नाम है **शांति सुमन** का। जन्मना मिथिला से जुड़ी शांति सुमन की रचनाओं में जहाँ एक ओर लोक गंध है वहीं नागार्जुन की धमक भी। वह दाम्पत्य की रागचेतना की एक अप्रतिम कवयित्री हैं। सेर्गेई येस्येनिन ने लिखा है, 'कवि होना ऐसा है जैसे जीवन के प्रति निष्ठा होना'। **शान्ति सुमन** की कविताएँ इसी जीवन-निष्ठा का प्रमाण देती हैं। वे आकाशचारी नहीं, धरती की रचनाकार हैं। उनकी गीत-कविताओं में धरती और उसके असंख्य शोषित-पीड़ित जनों के स्वर गूँजते हैं। उनकी कविता का संगीत लयाश्रित है—वर्णिक या मात्रिक छन्दों की जगह उन्होंने लय को ही अपनी कविता की ऊर्जा बनाया है। उनकी कविताएँ गुनगुनाने और गुनने में एक संतुलन बनाती हैं। विम्बात्मकता, भाषा की ध्वन्यात्मकता उन्हें एक अलग पहचान देती है। उनमें बांसुरी और शंख दोनों की ध्वनियां मिली-जुली हैं। गीत के संसार को उन्होंनें एक व्यापकता दी है और कहा जा सकता है कि उन्होंने गीत के एक प्रतिसंसार की रचना की है जिसमें लोक बोलता है, एक विश्वसनीय सहचर की तरह संवाद रचता है और यह दुनिया

कितनी सुन्दर है, सुन्दर और बनाओ के लिए आवाज देता है। वे नींद में भी खिलखिलाती हंसी का संकेत देती हैं। सर्द हवाओं में भी खुशबू का अहसास होता है। प्रकृति के बिम्बों से लैस उनकी कविता में हाथों से होते हुए पेटों तक फैला हुआ जो एक मकड़जाल है; वे अनुरोध करती हैं **'चम्पा के पेड़ नहीं बाबा/महुआ के पेड़ लगाना'**। **शांति सुमन** सपने बुनती हैं और उन सपनों को जीवित रखना चाहती हैं, मरने देना नहीं चाहतीं। उनकी कविता विद्यापति और नागार्जुन की काव्य चेतना की मिली-जुली बुनावट की कविता है। उन्हें पढ़ना जितना प्रीतिकर है उतना ही आंदोलित करने वाला भी। वह घर आंगन से खेतों-खलिहानों, कल कारखानों में खटते आमजन की कविता है। उन्हें पढ़ना अपने समय को पढ़ना है। वह प्रतिष्ठानी कविता से अलग खड़ी हैं और अपने रचनाकार की एक अलग पहचान करवाती हैं। वे उत्पादनकता की नहीं सृजनात्मकता की कवयित्री हैं। इसलिए लिखती है—**"खेत में फसलों सी/फसलों सी खेत में/दिन-दिन पको।"**

'लय हरापन की' के गीतों में आपको ये सारी ध्वनियाँ मिलेंगी। शांति सुमन के गीतों में अद्वितीय सौन्दर्य-बोध है। इस प्रकार का सौन्दर्य-बोध कम गीतकारों में ही मिलता है।

—माहेश्वर तिवारी

■

# बिहार की सबसे दुलारी बेटी शांति सुमन

## ..... और कुछ अंतरंग बातें

पिछली सदी के सातवें दशक का उषःकाल। वह दौर नवगीत के उत्कर्ष का दौर था,जिसमें मिथिलांचल का मुजफ्फरपुर शहर भी अग्रणी भूमिका निभा रहा था। वहाँ नर्तकियों के मुहल्ले चतुर्भुज स्थान में 'निराला निकेतन' के आहाते में पशुपति-सा अघोर जीवन जीनेवाले, गीत-पुरूष आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का विराट व्यक्तित्व पूरे हिन्दी जगत में छान्दसिक मन के नव-जागरण का जयघोष कर रहा था। वहीं, नवगीत के प्रथम नामकरण के सिलसिले में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह लगातार चर्चा में थे और अपनी 'गीतांगिनी' तथा 'आओ खुली बयार' के गीतों के माध्यम से प्रयोगवादी कवियों को ललकार रहे थे। पास के ही नगर समस्तीपुर के आरसी प्रसाद सिंह धारा-प्रवाह गीत लिखकर आकाशवाणी के श्रोताओं पर छाये हुए थे और सीतामढ़ी कचहरी में बैठकर रोजी-रोटी कमाने वाले रामचंद्र चंद्रभूषण 'धर्मयुग' में निरंतर छप रहे अपने नवगीतों के बल पर बड़े-बड़ों को धोबियापाट मार रहे थे। इसी संगम में उन दिनों गीत की एक दुबली-पतली-सी धारा सहरसा जिले में बहने वाली नदी कोसी से फूटकर आ मिली थी, जिसका मूलनाम तो कुछ और था, मगर पूरे हिन्दी और मैथिली जगत ने उसे **शान्ति सुमन** के नाम से जाना। मैं जब 'नाच गुजरिया नाच' गाते हुए काशी के काव्यमंच पर उतरा था, तब तक नवगीतकार के रूप में **शांति सुमन** का नाम मुजफ्फरपुर और बिहार की सीमा को पार कर काशी-प्रयाग जैसे प्रमुख काव्यतीर्थों में चर्चित हो चुका था। वह मुझसे उम्र में थोड़ी सी बड़ी थी, मगर साहित्यिक कद में बहुत बड़ी थी। नवगीतकारों की प्रथम पंक्ति में वह स्थापित हो चुकी थी, जबकि मैं कहीं कुछ नहीं था। मैं हिन्दी के क्षेत्र में नवागत था, क्योंकि मेरी प्रारंम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई थी और उच्च शिक्षा अंग्रेजी में। हिन्दी का मेरा ज्ञान एकलव्य की तरह

नितान्त ऐकान्तिक था। शान्ति न केवल हिन्दी में उच्च शिक्षा प्राप्त थी, बल्कि मुजफ्फरपुर के एक प्रतिष्ठित कॉलेज में हिन्दी की प्रवक्ता थी। अपनी नयी गीताभिव्यक्ति, कोकिल स्वर और सहज-सरल व्यक्तित्व के कारण शांति ने अपनी कीर्ति-पताका दशों दिशाओं में फहरा दी थी। काव्य-रसिकों को उसके नवगीतों में मुजफ्फरपुर की शाही लीची का सौरभ और स्वाद मिलने लगा था।

उस समय जितनी कवयित्रियाँ गीत लिख रही थीं, उनमें शांति सुमन के गीत अपने ताज़े बिम्बों-प्रतीकों तथा मिथिला क्षेत्र के टटके शब्दों के कारण अलग पहचान बना रहे थे। महादेवी जी के बाद **शांति सुमन** का गीत-काव्य ही हिन्दी कविता में नया कुछ जोड़ रहा था। यहाँ तक कि बिहार के अनेक गीतकार **शांति** की उपलब्धियों से ईर्ष्या करने लगे थे। शास्त्री जी जैसे महारथी के हास-परिहास में भी व्यंग्य का पुट कभी-कभी बढ़ जाता था। हाँ, बाबा नागार्जुन को इस बात की बेहद खुशी थी कि उनके बाद की पीढ़ी में **शांति सुमन** मिथिला की मिट्टी-पानी को अपने गीतों के माध्यम से पूरे देश में फैला रही है। मुझे खुशी इस बात की थी कि मुझसे पहले हिन्दी गीतों में मिथिला क्षेत्र के आंचलिक बिम्बो-प्रतीकों और देशज शब्दों को डालकर **शांति** ने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया था। यदि **शांति** मुझसे पहले यह दुस्साहसिक कार्य न कर चुकी होती तो मैं बनारस की कागज़ी हिन्दी से आगे पाँव बढ़ा नहीं पाता। इसके लिए मुझे **शांति** बहन के प्रति कृतज्ञ होना ही चाहिए। दूसरी बात, कद में बड़ी होने के बावजूद उसने कभी मुझे भूलकर भी यह एहसास नहीं होने दिया कि वह मेरे समकक्ष नहीं है। बाजरे की रोटी की तरह गोल-मोल चेहरा, लम्बे घुंघराले बाल, दो बड़ी-बड़ी काली सपनीली आँखें और पाकड़ के टूसे की तरह मुलायम आवाज़-यही थी **शांति सुमन**, जिसे मैंने पहली बार देखा था मोतिहारी में कवि सम्मेलन के मंच पर।

मोतिहारी का वह कवि सम्मेलन मेरे लिए अविस्मरणीय है। काशी से तीन नवयुवक कवि उसमें भाग लेने पहली बार गये थे - भोजपुरी के महाकवि पं. चंद्रशेखर मिश्र के अनुज जगदीश, गायकी और कुश्ती में समान अधिकार रखने वाले अभय नाथ तिवारी और काशी क्षेत्र के मंचों पर तहलका मचाने वाला मैं। तीनों विधिवत् आमंत्रित नहीं थे, बल्कि काशी के नयी पीढ़ी के कवियों के नमूने के तौर पर पार्सल किये गये थे। सभापति गीत-सम्राट शास्त्री जी थे और संचालन सत्यनारायण कर रहे थे। ओपनिंग बैट्समैन मैं ही था। शुरूआत अच्छी हुई, मेरे काव्यपाठ ने सबको चौंका

दिया। पाँच-छः कवियों के बाद बड़े स्नेह से बुलाई गई बिहार की सबसे दुलारी बेटी **शांति सुमन**। कवि सम्मेलन के मंचों पर सज-सँवर कर आने वाली कवयित्रियों की छवि तोड़ती हुई वह ऐसे माइक पर आयी,जैसे 'भानसघर' में चूल्हे पर अदहन चढ़ाकर सीधे आ रही हो। कोई बनाव-सिंगार नहीं, कोई भूमिका नहीं। शास्त्री जी को प्रणाम कर वह सीधे शुरू हो गयी—**"हाथों में एक-दो मूँगफली और कुछ अंतरंग बातें/यादों में तह करके रख लें हम/पार्कों में हुई मुलाकातें।"**

प्रेमाभिव्यक्ति का यह सर्वथा नया रूप था, जिससे मैं रूबरू हुआ था। मुझे लगा जैसे सहरसा की कोसी अपने तटबंधों को तोड़ती हुई सीधे महानगर के पार्कों में चली आयी हो। आज के शहरी युवा मन को यथार्थ के चश्मे से देखकर उतारे गये शब्द, बिम्ब और प्रतीक। 'कुंज भवन सँय निकसलि रे रोकल गिरिधारी' की ज़मीन से उपजा यह आधुनिक चेतना का प्रेमगीत नवगीत शब्द को सार्थक भी कर रहा था और परिभाषित भी। महाकवि विद्यापति यदि आज होते तो ऐसे ही गीत लिखते। न भी लिख पाते तो कम से कम **शांति सुमन** की पीठ जरूर थपथपाते। शास्त्री जी ने भी वही किया। सभापति से लेकर अंतिम पंक्ति के श्रोता तक मंत्र-मुग्ध। जो नहीं समझ पाये, वे भी शांति की स्वर-माधुरी के जादुई प्रभाव में आ गये थे। संचालक के आग्रह पर शांति ने एक और गीत सुनाया—**"हम न बोलेंगे हमारी बात बोलेगी/उम्र भर ठहरी हुई बरसात बोलेगी।"**

सामान्य बरसात तो दो-एक मास से ज्यादा नहीं रहती, फिर यह कौन-सी बरसात है जो उम्र भर ठहरती है ? यह बात वही लिख सकता है, जिसका घर कोसी-कमला जैसी नदियों के किनारे बसा हो। मैंने मिथिला के गाँवों के उस कठोर जीवन को बचपन में भोगा था, इसलिए मुझे वह गीत उस शंख की तरह लगा, जिसमें पूरा समुद्र प्रतिध्वनित हो रहा हो, जैसे बिफरी हुई कोसी के सामने डरे हुए गाँव के लोग गुहार कर रहे हैं—**"गाम-गाम धुपवा दिये लै माय कोसिका/मैया तोरा नहि माया दरेग/गे मैया बिछिया करे अनघोल।"**

यह रूप किसी ममतामयी नदी का नहीं था। यह थी करालवदना काली, जिनके पाँवों की बिछिया से हहराती नदी का कलकल निनाद प्रवाहित हो रहा था। **शांति** गीत सुनाकर और हज़ारों श्रोताओं की तालियाँ बटोरकर बैठ गयी थी, मगर मैं देर तक अपने गाँव की करेह नदी के किनारे फैले झाऊवन की झाड़ियों में उलझा रहा।

कवि सम्मेलन समाप्त होते ही हम सभी यानी सत्य नारायण, **शांति** और तीनों बनारसी नमूने आदरणीय शास्त्री जी के साथ ट्रेन से विदा हुए। मेरे दोनों साथी तो ऊपर की बर्थ पर जाकर सो गये, मगर बाकी हम सभी शास्त्री जी के अगाध पांडित्य और अजस्त्र स्नेह के मानसर में मुजफ्फरपुर स्टेशन आने तक डूबते-उतराते रहे।

उसके कुछ दिनों बाद रानीगंज (प. बंगाल) के एक कवि सम्मेलन में उससे फिर भेंट हुई और जमकर भेंट हुई। उसमें वह अपने पतिदेव दास बाबू और बिटिया चेतना के साथ आयी थी। दो दिनों में हम लोग कुछ इसतरह घुल-मिल गयेकि लगाजैसे एक ही परिवार के सदस्य हों। इसका सारा श्रेय **शांति** के ममत्व और दास बाबू के अपनत्व को ही जाता है। चेतना भी उससमय कक्षा सात में पढ़ती थी। रानीगंज के पास एक कोलियरी में दास बाबू के रिश्तेदार कोई लाल साहब रहते थे। हम लोग उनके यहाँ गये और उनके आग्रह पर एक दिन कोलियारी के कामगारों के बीच भी बिताया। लाल साहब सामिष भोजन के शौकीन भी थे और विशेषज्ञ भी। उन्होंने जो गोश्त बनाया, उसमें खरा मसाला डाला गया था। यहाँ तक कि लहसुन भी पूरा का पूरा। यह विधि मुझे इतनी पसंद आयी, कि बनारस जाकर मैं भी इसका प्रचारक बन गया।

तब तक **शांति** का पहला गीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' प्रकाशित हो चुका था। इस संग्रह के तमाम गीत मुझे इसी यात्रा में शांति के मुंह से सुनने को मिले थे। 'होने दो/ओ रे मितवा /जो जी में है', जैसे लोक रंग वाले गीत भी इसी संग्रह से उसने सुनाये थे। उस यात्रा के बाद हमलोग ऐसे भावनात्मक सूत्र में बँध गये, जिसमें एक दूसरे को सँभालने और सँवारने की प्रवृत्ति प्रबल थी। उसके बाद न जाने कितनी यात्राएँ हमने साथ-साथ कीं। नवगीतकार उमाकान्त मालवीय की वह चहेती कवयित्री थी, सत्यनारायण और गोपी बल्लभ की सहोदरा और मार्कंडेय प्रवासी के लिए हारिल की लकड़ी। परवर्ती गीतकारों में नचिकेता को उसके सान्निध्य का अवसर अधिक मिला। मुझे जब प्रवासी जी के प्रयास से मैथिली काव्यमंचों पर भी जाने का मौका मिला तो **शांति** से मिलना-जुलना दुगुना हो गया। वह काशी के कवि सम्मेलनों में जब भी आती, मेरे घर ही ठहरती, और इस ठसक के साथ जैसे बच्चों की बड़ी बुआ आयी हो। मुझे भी समय-समय पर मुजफ्फरपुर में **शांति** के आवास में रैनबसेरा करने का अवसर मिला है। रमना मुहल्ले में एमडीडीएम कॉलेज के पास ही बड़ी मिहनत से एक-एक ईंट जोड़ कर दोनों ने उस घर को बनाया

था। नौकरीहारा दम्पति की वर्षों की श्रम-साधना से बना वह घर आज खाली पड़ा है। **शांति** ज्यादातार अब जमशेदपुर में अपने सुपुत्र अरविन्द (मुकुल) के साथ रहती है। कभी-कभी मोहवश जब मुजफ्फरपुर की ओर रुख करती है, तो सारा घर अवसाद से उबरकर झनझना उठता है—शांति सुमन का एक बड़ा प्यारा-सा गीत है—**"केसर रंग रँगा मन मेरा सुआपंखिया शाम है/बड़े प्यार से सात रंग में लिखा तुम्हारा नाम है।"**

अद्वितीय सौन्दर्यबोध है इस गीत में। नवगीत में इस प्रकार का सौन्दर्यबोध बहुत कम ही देखने को मिलता है। डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने नवगीत को नई कविता (मुक्तछंद कविता) बनाने के फेर में इसमें नकारात्मक सोच को इतना प्रश्रय दिया कि नवगीत अपने मूल स्वर को छोड़कर निराशावादी आलाप लेने लगा। नवगीत के स्वयम्भू आकाओं ने कुछ ऐसा पंक्तिपावन रूप अपनाया, कि एक समय ऐसा आया जब प्रत्येक महारथी गीत लिखना छोड़कर खुद को 'जेनुइन' और दूसरों को 'फेक' सिद्ध करने में ही सारी ऊर्जा खर्च करने लगे। तीन कनौजिया तेरह चूल्हे। स्वभाव से झक्की शम्भुनाथ जी ने ऐतिहासिक 'नवगीत दशक' योजना से वीरेन्द्र मिश्र, रमेश रंजक, **शांति सुमन**, कैलाश गौतम जैसे स्वर्णिम हस्ताक्षरों को बिलगाकर जो मनमानी की, उससे नवगीत आंदोलन बिलकुल चरमरा गया। इन्हीं सब कारणों से निराश होकर **शांति** ने जनवादियों के हुजूम में शामिल होकर संवेदनशील नवगीत की जगह अपेक्षाकृत अभिधात्मक जनगीत लिखना शुरू किया—**"थाली उतनी की उतनी ही /छोटी हो गयी रोटी/कहती बूढ़ी दादी मेरे गाँव की।"**

इस तरह के दर्जनों जनगीतों की रचना कर **शांति** ने अपनी सामाजिक चेतना को सार्थक अभिव्यक्ति देने और देश के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे वर्ग-संघर्षों को भावनात्मक समर्थन देने की पहल की। सबसे बड़ी बात यह है कि लगातार चार दशकों से उसकी लेखनी अविराम चल रही है और बिना कोई भाषण दिये वह एक पर एक गीत -संग्रह दे रही है, जबकि दशाश्वमेध के कई नामी घोड़े बीच रास्ते में ही टें बोल गये। एक मुहावरा है कि "घी का लड्डू टेढ़ो भला," सो **शांति सुमन** चाहे नवगीत लिखे या जनगीत, समृद्ध हिन्दी गीतविधा का भंडार हो रहा है। काश, यह उदार चेतना नवगीत के पुराण-पुरूषों में होती तो नवगीत की गाड़ी आउटर पर ही पटरी से न उतरती ! आज नवगीत का इलाका पाखंडियों और अपाहिजों से भरा पड़ा है। तुलसी के शब्दों में—**"जीविका-विहीन नर सीद्यमान सोचबस/ कहै एक एकनसों कहा जाइ का करी।"**

**शांति सुमन** की तेजस्विता ने अहल्या बनकर अपने उद्धार के लिए किसी जाग्रत आलोचक की अन्तहीन प्रतीक्षा करना स्वीकार नहीं किया। उसने वही किया, जो उसके भीतर बैठे आलोचक को भाया। **शांति** कीं खासियत है कि वह मुजफ्फरपुर में रहकर भी न तो राजेन्द्र प्रसाद सिंह के जूना अखाड़े में शामिल हुई, न ही शास्त्री जी के उदासीन सम्प्रदाय में विलीन हुई। बिना कुछ बोले उसने अपनी राह बनाई, जो सबसे अलग है।

अपने गीत-संग्रह **'पंख-पंख आसमान'** में वह देखती है—**"प्यार पैबन्दों सिले/गठरी लिये कोई ...../चुप हुआ मौसम कि वर उबटन लगाने से/पकड़ ली जाये कोई महुआ चुराने से।"**

साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित 'श्रेष्ठ हिन्दी गीत संचयन' (सं. कन्हैया लाल नंदन) में महत्वपूर्ण गीतकारों की श्रेणी में **डा. शांति सुमन** के दो बड़े सुन्दर गीत संकलित हैं—'नदी की देह' और 'आग बहुत है'। दोनों गीत बहुत सारे नये प्रतीकों में बहुत कुछ कह जाते हैं।

इस तरह के तमाम चित्र हैं जो पहली बार **शांति सुमन** के माध्यम से हिन्दी गीतों में आये हैं। **शांति** में इतनी प्रतिभा है कि वह चाहती तो थोड़े-से प्रयत्न कर साहित्य अकादमी का पुरस्कार या किसी विश्वविद्यालय की वाइसचांसलरी झटक सकती थी, मगर उसकी खुद्दारी और काव्य-सृजन के प्रति अटूट निष्ठा ने उसे इस प्रकार के लोकतांत्रिक जुगाड़ों से दूर रखा।

धन्यवाद उ.प्र. हिन्दी संस्थान (कार्यकारी अध्यक्ष-सोम ठाकुर) को, जिसने एक लाख एक हजार का सौहार्द सम्मान देकर इस मैथिलीभाषी रचनाकार के हिन्दी लेखन को सम्मानित किया। दुर्भाग्य हिन्दी भाषा का है कि इसमें समर्पित भाव से काम करने वालों को गँवार और जाहिल माना जाता है। **शांति** आज जिस मुकाम पर है, उस पर उसे देश और प्रदेश के सभी शीर्ष पुरस्कार मिल जाना चाहिए था, मगर वह न तो दिल्ली में रहती है और न अपनी बिरादरी की है, इसलिए उसे मुँह में जाबी बाँधकर ही अपनी गीत-यात्रा कायम रखनी होगी। वैसे, वह स्वयं मानती है कि एक अच्छे गीत के सृजन का सुख सौ नोबेल पुरस्कारों के सुख पर भारी पड़ता है। वह यह भी मानती है कि आज नहीं तो कल उसके गीतों का सही मूल्यांकन जरूर होगा। ईश्वर उसके इस आत्मविश्वास को सदा बनाये रखे, जिससे वह आखिरी सांस तक सृजनरत रहे।

**—डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र**

■

# अनन्तरा

'ओ प्रतीक्षित' मेरा पहला नवगीत संग्रह 1970 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद मेरे कई गीत संग्रह थोड़े-थोड़े वर्षों के अन्तराल पर आये। जब 1978 में 'परछाईं टूटती' मेरा दूसरा गीत संग्रह आया तो उसकी बहुत चर्चा हुई। उमाकांत मालवीय, ओम प्रभाकर आदि स्थापित नवगीतकारों ने उस संग्रह के गीतों में अपने समय का संवाद और नवगीत का विकसित शिल्प देखा और अपने आस-पास के जीवन और समाज को नये और कुछ तो पहली बार प्रयुक्त हुए बिम्बों में व्यक्त होते अनुभव किया। उन्हीं दिनों मेरे गीतों में निजता की परिधि में सामाजिकता की जगह बनने लगी थी। 'सुलगते पसीने'-'79 और 'पसीने के रिश्ते'-'80 मे मेरे गीतों के स्वर बदल गये थे। उस पर किसान आंदोलन और नक्सलवाड़ी की घटनाओं के प्रभाव पड़ने लगे थे। 'मौसम हुआ कबीर'-'85 में तो वे पूरी तरह जनवादी गीत थे। आम आदमी के सुख-दुख, हास-अवसाद को लिखने वाले गीत अब श्रमजीवी संघर्षरत जन की त्रासदी से, उनके जुझारू तेवरों से जुड़ गये थे। उनमें जन-विरोधी व्यवस्था से मुठभेड़ करने की क्षमता भर गई थी। इन जनवादी गीतों में भी कुछ ऐसे बिम्ब आये हैं जो नये हैं और निहितार्थ को अधिक सघन सम्प्रेषित करते हैं।

फिर मेरा अगला गीत-संग्रह 'तप रहे कचनार'—('97) के नाम से आया। इसमें संग्रहीत कुछ गीत अपनी अनुभूति की ऊष्मा और शिल्प की कोमल ताजगी के लिये चर्चा में आये। मंचों से भी इन गीतों का जन-सरोकार अत्यंत सघन रहा। '02 में प्रकाशित 'भीतर-भीतर आग' के गीत प्रेम, प्रकृति

और सौन्दर्य की चेतना को ग्राम्य जीवन, परिवेश एवं संस्कृति की अंतरंगता में मिलाकर लिखे हुए गीत हैं। '04 में प्रकाशित 'पंख-पंख आसमान' मेरे उस समय के चुने हुए एक सौ एक गीतों का संकलन है।

'एक सूर्य रोटी पर'—'06 में प्रकाशित होकर आया तो उसके साथ उसकी कुछ मीठी कुछ तीखी आलोचनाएँ भी आईं। वस्तुतः समीक्षकों और आलोचकों की मान्यताओं में मेरे गीत एक पक्ष को नवगीत के रूप में 'बेला के फूलों की तरह गमकने वाले गीत' लगे तो दूसरे पक्ष को वे नितान्त जनवादी गीत लगते थे। कुछ आलोचकों ने नवगीत से जनवादी गीत के प्रति मेरे लगाव को अपने ही कोमल सशक्त बिम्ब को तोड़ देना कहा। दूसरे पक्ष के आलोचकों को मेरी सामाजिक-राजनैतिक सचेतनता के कारण इन गीतों में संघर्षोन्मुख जनपक्षधरता, परिवर्तनकामी विचार और वस्तुपरक रचनादृष्टि की सकारात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा जनगीत के नये सौन्दर्य शास्त्र के तीव्रता से अनुभव किये गये संकेत मिले। 'धूप रँगे दिन'-'07 में सामाजिक चिन्ता और परिवेश के यथार्थ के विविध आसंगों से जुड़े हुए गीत हैं। समकालीन जीवन में बढ़ते हुए संकट के प्रति सजगता, गाँवों, नगरों, महानगरों के जन जीवन का ईमानदारी से साक्षात्कार इन गीतों की सामाजिक प्रतिबद्धता है।

बीच के वर्षो में'91 में 'मेघ इन्द्रनील' के नाम से मेरे मैथिली गीतों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ। पूरे देश के जन-जीवन से मिथिला का जन-जीवन अलग नहीं है। पर एक बात है जो मिथिला के जन-जीवन को अलग करती है, वह है इसकी संस्कृति। दुख और अभाव को जीते हुए भी यहां के गरीब और निम्न मध्यवर्गीय लोग अपने पर्व-त्योहार, अपने लोगों की आपसदारी और प्राकृतिक आसंग-'माछ-मखान' से भरे हुए पोखर, पुरइन के पत्तों पर झल-मल करती बूँदों के साथ खिले अजस्र-अजस्र श्वेत-रक्त कमल, विद्यापति के गीत-नचारी, पराती, समदाउनि, उचिती गाते हुए गांव घर और उनसे अलग भैंस की पीठों को संसद का सिंहासन मानते हुए 'पसर' चराते चरवाहे, बिरह गाती हुई ग्रामवधुएँ और 'बरसाइत', 'मधुश्रावणी' पूजती हुई नवविवाहितायें-उनकी छोटी-छोटी खुशी, बच्चों के मुट्ठी भर भात की थाली में उतरे मकर चाँदनी के उजास में मगन होते

सपने और उनकी इस समृद्धि से बढ़कर तब कुछ नहीं होता। इसलिये इन गीतों के साथ होना अपने अहसासों के साथ होना है। इन गीतों के लोकरंग मुझसे होकर आप सब तक पहुँचते हैं। यह इनका विस्तार है और मिथिला की लोकपदीय संस्कृति की अंतरंगता का प्रसार भी।

इसके बाद '94 में मेरी नई कविताओं का एक साझा संकलन आता है। उसका नाम है—'समय चेतावनी नहीं देता'। इसके प्रकाशन पर कुछ मेरे समानधर्मा गीतकार बहुत अप्रसन्न हुए। उनकी एक अप्रसन्नता थी कि मैं गीतकार होकर नई कविता कैसे लिख सकती हूँ। गीतकार का अर्थ सिर्फ गीतकार होता है। वे भूल गए कि गीत लिखकर उन्होंने गद्य भी लिखा। यदि गीत की प्रतिबद्धता अलग होती है तो वे दोहे, गजल आदि कैसे लिखते रहे। गीतकारों ने ऐसे विभाजन को बहुत महत्व दिया। रचनात्मकता का अपना एक विस्तृत परिवार और संसार भी होता है। यदि गीत की पक्षधरता में कोई कमी नहीं आई है तो फिर गीतकार पर ऐसा बंधन क्यों? मैंने अनुभव किया है कि कभी-कभी गीत के तीन कसे हुए अवतरणों के बाहर कुछ अनभिव्यक्त रह जाता है। कविता में वे पूरी परिणति पाते हैं। इस तरह गीत लिखने वाले कई गीतकार एक ही कथ्य को कई गीतों में लिखते रहते हैं। उनकी यह आवृत्ति गीत के फलक पर एक साधारण घटना बनकर रह जाती है और वैसे गीत वस्तु और शिल्प दोनों ही रूपों में कमजोर होते हैं।

'सूखती नहीं वह नदी' नाम से मेरी कविताओं का एकल संग्रह '09 में प्रकाशित हुआ। उसमें संकलित कवितायें 'बची रहे मनुष्यता', 'नदी', 'नयी बात नहीं', 'फसल की किताब' आदि कवितायें बहुत चर्चित हुईं। पारिवारिक प्रसंगों को लिखने में महारत हासिल करने की बात मेरी कविताओं के लिये भी कही गई। लयात्मक कोमलता की बात मेरी कविताओं की तरह मेरे उपन्यास के बारे में भी लोगों ने कहा। एक लयात्मक अनुभूति के कारण ही समीक्षकों को इस उपन्यास 'जल झुका हिरन' के साथ होना अपने आस-पास की जिन्दगी के साथ होना लगा। यह उपन्यास'76 में प्रकाशित हुआ था।

इन रचनाओं के अतिरिक्त मेरी आलोचना की भी एक पुस्तक

'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' नाम से आई। उसका प्रकाशन वर्ष 1993 है।

प्रायः पच्चीस-तीस गीत और कथा की पुस्तकों की समीक्षाएँ भी मैंने लिखी हैं।

यह सब इसलिये कहना पड़ा कि 'धूप रँगे दिन' के बाद 2011 में ही मेरे गीतों का संग्रह 'नागकेसर हवा' प्रकाशित हो सका। इन्हीं दिनों मेरे कुछ आत्मीय गीतकारों, आलोचकों, समीक्षकों और मित्रों ने मेरे गीतों, मेरी गीत-चेतना और मेरी रचनात्मकता को दृष्टि में रखकर उनके लिखे आलेखों को एकत्र प्रकाशित करने की योजना बनाई। मेरे गीत-कर्म की समीक्षा उनको अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण लगी। आलेखों की संख्या इतनी हो गई थी कि सबका समाहार एक पुस्तक में सम्पादकीय दृष्टिकोण से और आर्थिक रूप से भी कठिन लगा। इसलिये उनको दो खंडों में बाँट दिया गया। तब मेरे पति जीवित थे। इस आयोजन में उनकी बड़ी भूमिका थी। मेरे गीतों के प्रति उनका लगाव और मेरी गीतात्मकता की रक्षा की चिन्ता इन आलेखों के संकलन के कारण बने। मुझको भी यह सोचकर अच्छा लगा कि जिन गीतों को मैं लिखती हूँ उनके बारे में पाठक, समीक्षक, आलोचक और गीतकार क्या अनुभव करते हैं।

इस प्रसंग मे मेरे गीतों पर आलेखों की पहली प्रस्तुति 2009 में दिनेश्वर सिंह 'दिनेश' के सम्पादन में हुई। उसका नाम है -**'शान्ति सुमन की गीत रचना और दृष्टि'**। लोगों की खुशी से यह जाना कि प्रायः चालीस-पचास वर्षो की सृजनधर्मिता में अपना प्रमाणित होना कैसा लगता है। मेरे गीतों और गीत धर्मिता पर आलेखों की दूसरी प्रस्तुति डॉ. चेतना वर्मा के सम्पादन में 2012 मे हुई जिसका नाम है - **'शान्ति सुमन की गीत रचना : सौन्दर्य और शिल्प'**।

इस पुस्तक के प्रकाशन के समय एक दुर्योग घटित हुआ। 2012 के 12 नवम्बर को मेरे पति खुशी से मुजफ्फरपुर से जमशेदपुर के लिये विदा हुए। 13 नवम्बर को हम यहाँ दीपावली में परिवार के साथ शामिल हुए। तब कितनी आकांक्षायें, स्वप्न और मनोरथ थे जिनके बारे में वे लगातार बातें करते थे। पर कुछ दिनों के बाद वे अस्वस्थ होने लगे। उपचारों के

बाद भी स्वास्थ्य के लिये उनका संघर्ष जारी रहा। पुत्र अरविन्द और पुत्रवधू डॉ. विशाखा की चिन्ता, सेवा और आर्थिक रूप से बहुत कुछ करने पर भी, मेरी और चेतना की पूरी देख-रेख के बावजूद उनके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। 2 जनवरी को उनका जन्म दिन होता था। वे अब थके और कमजोर भी लगने लगे थे। हमने विचार किया कि अभी तो वर्ष शुरू हुआ है। थोड़ा भी स्वस्थ्य दीखने लगेंगे तो हम उनका जन्मदिन मना लेंगे। पर तय कुछ और ही था। 11 जनवरी को चिकित्सा की सुविधा और बेहतर परिचर्या के लिये अरविन्द ने उनको टाटा मेन अस्पताल के केबिन में भर्त्ती करा लिया था।

परिचारक रखने के बावजूद वह स्वयं उनके ही साथ रहता था। हमलोग अर्थात् मैं, विशाखा और चेतना 11 बजे रात को वहाँ से घर लौट आती थी क्योंकि वहाँ 10 बजे रात के बाद स्त्रियों का रहना नहीं था। 20 जनवरी की रात 11.25 बजे वे सदा के लिये सो गये। उस तारीख की रात 9 - 9.30 बजे उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कहा कि "आज यहीं रहना, नहीं जाना"। मैं दुनियादार नहीं होने और जीवन के अंतिम समय के मर्मक्षण के अनुभव को नहीं जानने के कारण उनके इस संकेत को समझ नहीं सकी। अस्पताल से आकर 30-40 मिनट भी नहीं हुए थे जब मुकुल (अरविन्द) और विशाखा रोते हुए मुझको लेने के लिये घर आये। अब दृश्य सामने था।

मैं जीवन में इस दुखान्त घटना से पूरी तरह टूट गई थी। मैं डर गई थी अपने जीवन में आने वाले संकटों से - ऐसे संकटों से जो निम्न मध्यवर्ग के परिवार में जीती हुई स्त्रियों के जीवन में आते हैं। उनके बिना अब मुजफ्फरपुर का मेरा घर अरक्षित है। उनके रहने से अरविन्द को कभी मुजफ्फरपुर की चिन्ता नहीं हुई। अब वही घर टूट रहा है। 69-70 से लेकर प्रायः 2000 तक मैं कवि सम्मेलन के मंचों पर सस्वर गीत पाठ के लिये आमंत्रित होती रही। मेरी इस प्रत्येक गीत-यात्रा में वे मेरे साथ रहे। ऑफिस से छुट्टी नहीं मिलने पर वे 'सिक लीव' लेकर जाते थे। कॉलेज में मेरी छुट्टियों से अधिक ऑफिस में उनकी छुट्टियाँ कट जाती थीं। फिर भी मंच से मेरे गीतों की प्रस्तुति और श्रोताओं की अपार भीड़ को देखकर उनको

बहुत खुशी होती थी। मेरी मित्र गीतकार कहती थीं कि साहित्य-सृजन में कोई पति इतना सहयोग करे, यह सचमुच खुश करने वाली बात है।

भीतर के संतापों से मैं बहुत खिन्न और अस्वस्थ थी और इतनी कमजोर हो गयी कि मुझको स्वयं अपना चेहरा पहचान में नहीं आता था। मैं किसी भी निर्णय को लेने की स्थिति में नहीं थी। इधर 'शांति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि' प्रकाशित हो जाने के बाद जिन लेखकों के आलेख उसमें नहीं थे, वे पूछने लगे। इतने फोन आते थे कि उस मनःस्थिति और पारिवारिक अस्तव्यस्तता में कुछ कहा नहीं जाता था। मैं तो फोन उठाती नहीं थी, चेतना तंग होती रहती थी। उसी अनिश्चय के अंधेरे में मैंने एक दिन चेतना से कहा कि शेष आलेखों को एकत्र करके प्रेस में दे दो। मैं दिनेश जी से भी सम्पर्क नहीं कर पाई। मैंने चेतना के सम्पादन में ही इसको प्रकाशित करने की बात कर दी। प्रेस तो पहले वाला ही था। इसलिये प्रेसवाली कोई असुविधा नहीं हुई।

ध्यान इस बात पर दिलाना चाहती हूँ कि चेतना का सम्पादन का कोई अनुभव नहीं था। इस तरह के आलेखों के सम्पादन का तो एकदम नहीं। जो भी आलेख बचे थे, उसने सब प्रेस को दे दिये। मैं उनको देख नहीं सकी और चेतना को तो सभी आलेख गीत पर लिखे ही मालूम हुए। बहरहाल, 'शांति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प' में अमित कुमार लिखित आलेख—'शांति सुमन के गीतों के बारे में' भी प्रकाशित हुआ। जब नचिकेता की निन्दनीय, असामाजिक, जन विरोधी और किसी सीमा तक आपराधिक प्रतिक्रिया आई तब मैंने उस आलेख को पढ़ा। यदि किसी मित्र जैसे भाई को वह सब लिखना शोभा देता रहा तो मैं उसके सब लिखे को '72 में उससे परिचय के बाद '73 से 2012 तक उसको भेजी गई राखियों के उपहार समझ लेती हूँ। पर उसने वह उपहार उसी समय मुझको दिया जब मैं जीवन के अँधेरे से घिरी थी। उसकी हैसियत में जो था, जो विचार, जो शब्द उसके थे, वही तो उसने दिये। शब्द तो संस्कार से ही आते हैं। जब वह किसी अपने को खोएगा और उसके साथ यह सब होगा, तब वह इस दाह को जान पाएगा।

ये वही परिस्थितियाँ थीं जो 'नागकेसर हवा' के बाद मेरे गीत संग्रह

के प्रकाशित नहीं होने की पृष्ठभूमि बनीं। अब उन घटनाओं को घटित हुए प्रायः डेढ़ वर्ष से अधिक होने जा रहे हैं। मेरे रचनात्मक जीवन के मरुथल में हरापन लौट रहा है। इस गीत संग्रह का नाम 'लय हरापन की' दिया है ताकि मरुथल को याद रहे कि हरापन लौटता है। उनके नहीं रहने के दुख ने मुझको अजस्र प्रेरणाओं के स्रोतों से जोड़ा है।

गीतकार उस माली की तरह होता है जो फूलों के बीज जुगाता है, खेत कोरता है, बीज डालकर अंकुर-अंकुर फूटते पौधे की प्रतीक्षा करता है। फूल आने तक वह पौधे से अपना मन नहीं हटाता। आत्मा की अजिर गुहा से वह फूल की पंखुड़ियों की सुगंध, उसका सौन्दर्य, उसके रूपाकार के उठते आह्लाद का अनुभव करता है। फूल की सुगंध ही उसकी लय, राग और ध्वनि है। वही उसकी अभिव्यक्ति है। गीतकार अपनी रचना-प्रक्रिया में बहुत कुछ इन्हीं स्थितियों से गुजरता है। ये स्थितियाँ साधारण नहीं होतीं। गीत लिखना भी साधारण काम नहीं है। गीत-रचना एक जटिल प्रक्रिया से गुजरती है। केदारनाथ सिंह ने गीत रचना की तुलना एक पतली रस्सी पर चलने से की तो इसके निहितार्थ को समझा जा सकता है। वह देखने और पढ़ने में जितना सहज है, उतना ही कठिन है भावों-विचारों के अंतर्लोक से उतरकर उसका शब्दों में व्यक्त होना।

पहाड़ों के ऊबड़-खाबड़ अन्तस्तल से निकली हुई नदी निर्मल और सहज लगती है, पर इस निर्मलता और सहजता के पहले उसको कई तप करने होते हैं और कई तापों को सहना होता है। नदी की तरल संवेदनाओं को प्राप्त करने के लिये गीत को भी कई सोपानों से गुजरना होता है। जिस तरह नदी लहरों में गाती है, गीत के शब्द-विन्यास में गेयता भरी होती है। अगेय गीतों की कल्पना नहीं हो सकती। संगीत और नाद-सौन्दर्य गीत के अलंकरण हैं। शब्द, भाषा-छन्द तो गीत के आवरण हैं। संवेदना ही वह आत्मीय तत्त्व है जिसको गीत अन्य काव्य विधाओं की अपेक्षा अधिक धारण करता है। इस आत्मीयता के कारण ही गीत में करुणा, मनुष्यता और अन्य सांस्कृतिक अनुगूँजें अधिक हैं।

अब तो आलोचक मानने लगे हैं कि गीत कविता से अलग, ऊपर और आगे की विधा है। अपनी कलात्मकता में भी इसकी लोक-सुन्दरता

और जन-सम्पृक्ति अद्‌भुत है। समकालीन यथार्थ को गीत सामर्थ्यभर अभिव्यक्त करता है। छन्द, लय और ध्वनि इसकी शक्तियाँ हैं। समकालीन जीवन को प्रभावी रूप में व्यक्त करना आज के गीत की विशेषता है।

नवगीत ने अपने अग्रज गीतकारों और उनकी अभिव्यक्ति का कभी अपमान नहीं किया। इसने उनसे ऊर्जा प्राप्त की है और उनके प्रबल पक्षधर की तरह अपने को प्रमाणित किया है। नवगीत ने जब अपने को पहले के गीतों से केवल किसी नयेपन के कारण नहीं, अभिव्यक्ति की क्षमता के कारण अलग अनुभव करने की चेष्टा की तो इस विकसनशील प्रवृत्ति को अलगाव का रूप देकर बहस का विषय बनाया गया, पर यह बहस अधिक दिनों तक नहीं चली। रमेश रंजक नवगीत को 'कविता की रागात्मक क्षति की पूर्ति का प्रयास' मानते थे। रागात्मकता के इसी विस्तार में रोमान भी छायावाद और पारम्परिक गीतों से अलग रचाव लेकर नवगीत में व्यक्त हुआ। रोमान जीवन से आसक्ति का पर्याय होता है। उसमें मानवीय संवेदनायें भरी होती हैं। यह रोमान ही है जो मनुष्य को जीवन-संघर्ष मे आगे करता है और जीवन के प्रति विश्वास टूटने नहीं देता। नवगीत ने समकालीन सामाजिक सरोकार के संवेदनशील अनुभवों से जोड़कर अपनी अभिव्यक्ति के आकाश को विस्तार दिया। ऐसा नहीं है कि उसमें केवल मध्यवर्गीय जीवन की दिनचर्या के दस्तावेज ही लिखे गये। उसमें भी खेत-खलिहान की चिन्ता है। किसानों-मजदूरों का स्पष्ट प्रतिबद्ध रूप में चित्रण नहीं है, पर बैलों की तरह खटते हुए, कम मजदूरी पाकर भूख से परेशान लोगों, पर्व-त्योहार पर भी नये कपड़े नहीं खरीदने की लाचारी, व्यवस्था के विसंगत त्रास इन गीतों में भी हैं। इनके पास सामाजिक दायित्व तो है, राजनीतिक दवाब नहीं है। स्त्रियों, दलितों और विपन्न वर्ग की दुर्गति के चित्र भी नवगीत में बहुत हैं। किन्तु इन अभिव्यक्तियों के पीछे उनकी सामाजिक करुणा और मानवीयता की प्रेरणा है। इसमें सामाजिक अंतर्विरोधों को भी खूब लिखा गया है। वर्ग-संघर्ष उस रूप में नहीं आया जिस रूप में जनवादी गीत में आया है। वहाँ तक पहुँचना नवगीत का अभीष्ट नहीं था क्योंकि सामाजिक और मानवीय धरातल पर ही नवगीतकार इन सब चीजों को समझ रहे थे। नवगीत की ईमानदार गीतात्मक पहल में किसी प्रकार का

अविश्वास किया ही नहीं जा सकता।

मुहावरों से भरी भाषा, देशज शब्दों के प्रयोग के साथ बिम्बों और प्रतीकों में प्रकृति और मानव-जीवन के संस्पर्श नवगीत की विशेष सम्पदा हैं। बिम्बों के लिये नवगीत ने अलग से अपना इतिहास गढ़ा। कुछ बिम्ब तो पहली बार नवगीत में ही प्रयुक्त हुए हैं और लोकप्रिय भी हैं। गीतों में भाषा और बिम्बों का बदलाव नवगीत की अपनी बेहद जरूरी पहचान है। परिष्कृत भाषा के स्थान पर सहज-सम्प्रेष्य भाषा का आकर्षण बढ़ा है। विसंगत परिस्थितियों के विरूद्ध संघर्ष का शंखनाद भी नवगीत में खूब सुनाई देता है, पर अपनी संवेदनशीलता का अतिक्रमण करके नहीं। इसलिये सोम ठाकुर ने कहा था कि 'आशय की पारदर्शिता ही नवगीत की सशक्त गुणवत्ता है।' इसीलिये नवगीत ने छन्दों की जड़ता को भी तोड़ा। छन्द और लय ने समकालीन जीवन के तनाव को कम किया है। माहेश्वर तिवारी का यह अभिकथन महत्वपूर्ण है कि 'ये बिम्बों, प्रतीकों, अप्रस्तुतों की ताजगी नवगीत की भाषा की सम्पन्नता के ही उदाहरण हैं'। डॉ0 बुद्धिनाथ मिश्र ने मेरे गीतों पर लिखते हुए एक स्थान पर कहा है—शान्ति सुमन का एक बड़ा प्यारा सा गीत है—

**"केसर रंग रंगा मन मेरा सुआपंखिया शाम है,**
**बड़े प्यार से सातरंग में लिखा तुम्हारा नाम है"**

अद्वितीय सौन्दर्य बोध है इस गीत में। नवगीत में इस प्रकार का सौन्दर्य बोध बहुत कम ही देखने को मिलता है।'

नक्सलवाड़ी आन्दोलन और मुख्य रूप से किसान आंदोलन के प्रभाव से गीत में जिस नयी प्रवृत्ति का जन्म हुआ जिसमें संघर्षरत - श्रमजीवी जन को केन्द्र में रखकर गीत लिखे गये - उसको जनवादी गीत के नाम से अभिहित किया गया। ये जन पक्षधर गीत सामाजिक मुक्ति की परिवर्तनकारी चेतना से भरपूर जनप्रतिबद्ध गीत हैं। इनमें शोषकों के विरूद्ध समस्त शोषितों-पीड़ितों को एकजुट होने का आह्वान किया गया है। व्यवस्था के मकड़जाल को तोड़ने के लिये इन गीतों में जन-शक्ति को संगठित करने का आवाहन भी है। व्यवस्था-विरोध ने जनवादी गीत की कबीर-चेतना को बहुत तेज धार दी है। पूंजीवादी मानसिकता, साम्राज्यवादी

प्रवृत्ति के शोषण-तंत्र से जनता को मुक्त करना जनवादी गीतकारों का परम लक्ष्य है। ये गीत वस्तुपरक तरीकों से सामाजिक विषमताओं को उकेरते हैं। लोक भाषा, संस्कृति, मुहावरों के प्रयोग से ये गीत जनता के अधिक निकट हैं। समकालीन भयावह यथार्थ को इससे पहले इतने तीक्ष्ण रूप में उजागर नहीं किया गया। ये गीत जन-समाज के पहरेदार जेसे लगते हैं और जनता को शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध खड़ा होने का साहस देते हैं। इस तरह ये गीत जुझारू जनता के संकल्प भी हैं। श्रमजीवी जनता के जीवन-संघर्ष के प्रति जागरूक ये गीत शोषकों को सावधान भी करते हैं। इन गीतों के साथ होना अपने समय के साथ होना है। ये गीत समय से सीधे संवाद करते हैं और समस्त जनविरोधी शक्तियों का एकजुट विरोध भी। इन गीतों ने समाज की सोच को बदला है। जनता अब अपने अधिकारों के प्रति भी सचेत हो रही है। उसकी यह सजगता पीढ़ियों की मानसिक गुलामी के विरूद्ध खड़ी हुई है।

मेरे पहले के गीत-संग्रह **'परछाई टूटती'** यद्यपि मेरे तबके नवगीतों का प्रतिनिधि संग्रह है, फिर भी उसमें जनपक्ष के बिम्ब कई गीतों में आये हैं। **'सुलगते पसीने'** और **'पसीने के रिश्ते'** के गीत तो जनपक्षधर गीत हैं। इसके बाद **'मौसम हुआ कबीर'** मेरे जनवादी गीतों का संग्रह है। उसके रचाव की चर्चा डॉ. मैनेजर पांडेय ने भी की है। **'तप रहे कचनार'** नवगीतों का संग्रह है। **'भीतर-भीतर आग'** के गीत यद्यपि नवगीत के कथ्य और शिल्प से बुने हैं, पर उसमें भी कई गीतों में जनवादिता अनुस्यूत है। 'पंख-पंख आसमान' मेरे चुने हुए एक सौ एक गीतों के संचयन में पाठकों को नवगीत और जनवादी गीत-दोनों की उपस्थिति मिलेगी। **'एक सूर्य रोटी पर'** के गीत अपनी जन पक्षधरता के लिये ही जाने गये। फिर **'धूप रंगे दिन'** में अधिकांशतः गीत की दोनों ही धारायें मिली-जुली हैं।

अपने कविता संग्रहों--**'समय चेतावनी नहीं देता'** और **'सूखती नहीं वह नदी'** की बात करूँ तो इतना सच है कि लहू बहाने वाले गीतों और कविताओं में ही क्रांति नही होती और बिना हँसिया-हथौड़े के भी जनवादी गीत लिखे जा सकते हैं, लिख गये हैं और श्रमजीवी संघर्षरत लोगों के वे अधिक निकट हुए हैं। जनता ने उन रचनाओं में अपने जीवन-यथार्थ

की ध्वनि सुनी है।

अपने उपन्यास—**'जल झुका हिरन'** के बारे में यह लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा कि कई समीक्षकों ने उसको एक लम्बा गीत ही माना। उपन्यास के लिये यह प्रशंसा की बात नहीं हो, पर मैं इसको कटु आलोचना नहीं मानती। गद्य गीत के निकट हो तो इसका श्रेय उसकी भाषा को जाता है।

**'नागकेसर हवा'** जब 2011 में प्रकाशित हुआ तो मेरे कुछ आत्मीय गीतकारों को उसके प्रकाशन के पहले यह लगा कि उसमें किस प्रकार के गीत होंगे। मैं पहले लिख चुकी हूँ कि एक वर्ग के गीत के भावकों को मेरे नवगीत ही प्रिय हैं और दूसरा वर्ग मुझसे जनवादी गीत की ही अपेक्षा करता है। मुझको इस सोच से कोई असुविधा नहीं होती। मेरे भीतर इससे ऊर्जा बढ़ती है। मेरे गीत मेरी भावनाओं और विचारों से समृद्ध होते रहते हैं। उसी बीच'91 मे मेरे मैथिली गीतों का संग्रह **'मेघ इन्द्रनील'** के नाम से आया। समीक्षकों ने उन गीतों को विद्यापति, जयदेव और नागार्जुन ('यात्री') के गीतों के साथ रखकर देखा। यह केवल आह्लादक नहीं था, अपितु अपनी गीतधर्मिता के प्रति विश्वास बढ़ने का विषय भी था।

हमारे समय के गीत-निष्ठ रचनाकारों में जिनके साथ हम पत्रिकाओं में छपते थे, गीत-गोष्ठियों और कवि सम्मेलन के मंचों से जनता से जुड़ते थे और मंच भी गीत की किताब बन जाता था, अपने सुख-दुख में एक दूसरे के शब्दों को जरूरी समझते थे, जिस स्थान पर काव्य-संध्यायें मनीं वहाँ जिनका घर होता था, कुछ दूरी पर भी सही तो हम एक दूसरे के घर-परिवार से मिलते थे, उन घरों के लोग हमारे कितने अपने लगते थे और गप-शप और हँसी-खुशी में हम अपने जीवन के संघर्ष भी भूल जाते थे, हमारा कुशल-क्षेम एक दूसरे के घर आता-जाता था, सचमुच एक बड़ा ही आत्मीय गीत-संसार था हमारा, उनमें अब उमाकान्त मालवीय नहीं रहे, कैलास गौतम भी नहीं, देवेन्द्र कुमार का घर तो उमाकान्त मालवीय के घर की तरह अभिभावक का घर ही लगता था, सोम ठाकुर तो राजकीय जिम्मेदारी और गीतधर्मिता के तकाजों के बीच व्यस्त रहते थे/हैं, ओम प्रभाकर ने अब अपनी एक अलग दुनिया बना ली है, उनका गीत से भरा मन गजल, रूबाई

की गुलाबी रंगत से मगन है, कुँवर बेचैन गीत और गजल दोनों का अलख जगाते रहते हैं, अब पत्रिकाओं और गीत-संग्रहों के पन्नों पर हमारी भेंट होती है। बनारसी संस्कृति को अपने गीतों और स्वरों में ढालने वाले हरिराम द्विवेदी और प्रांजल नवगीतकार श्री कृष्ण तिवारी (जो अब नहीं रहे) के शब्द और स्वरों की अनुगूँज हवाओं को याद है, उमाशंकर तिवारी में एक नवगीतकार की आत्मीय निश्छलता बहुत थी, किसन सरोज भी अक्सर कविता के आयोजन में मिल ही जाते थे। और अनेक नाम हैं जिनसे मिलकर हमारा एक सघन गीत-परिवार बन गया था।

अलग से रमेश रंजक का नाम लेना चाहती हूँ। वे एक स्वच्छंद जनवादी गीतकार थे, अपने मन के मालिक। उनकी जिद रचनात्मक थी तो अपने प्रति निर्मम भी। मित्रों को उनकी भीतरी दुनिया की थाह नहीं लगती थी। वे सदैव अपने भावों-विचारों में संलग्न देखे जाते थे। मित्रता का आदर था और कभी-कभी तो इतने उदार कि अपने शब्दों, बिम्बों को अन्यत्र देखकर भी चुप रहते थे। उनके गीतों की प्रस्तुति उनका कद और बढ़ा देती थी। तब लगता था कि वे अन्यतम जनवादी गीतकार हैं। हम अनुभव करते थे कि नवगीत से ही वे जनवाद की ओर आये थे, परन्तु उनके सामने यह कोई कह नहीं सकता था। मेरे गीतों पर वे अलग से लिखने वाले थे।

एक नाम का बड़े आदर के साथ चर्चा करना चाहती हूँ—पूज्य वीरेन्द्र मिश्र का। कविता के किसी भी आयोजन में वे अपने आत्मीय गीतकारों—वह समान वय का हो या कनिष्ठ—के ऊपर छाँह बन जाते थे।

अब दो गीतकारों के बारे में लिखना अधिक सुखद लगता है। वे हैं माहेश्वर तिवारी और बुद्धिनाथ मिश्र। इनकी युगलबन्दी कभी नहीं टूटी। दिल्ली, मेरठ, रामपुर, या उस इलाके का कोई भी शहर जहाँ आयोजन होता था, मुरादाबाद ही लगता था। कितना पारिवारिक सौहार्द। सांगीतिक आरोह-अवरोह से बुनी उनकी प्रिया पत्नी हम सबको (आयोजन में मेरे पति भी साथ होते थे) बाहर से आये हुए लोगों के संज्ञा सर्वनामों को मिटाकर अपने घरेलू स्नेह से बाँध लेती थीं। तब दुख होता था कि कॉलेज में नौकरी नहीं कर रही होती तो दो-चार दिन और भी रह कर उनके अपनापन को साँसों में भर लेती।

वैसे मैं गोरखपुर से ही माहेश्वर जी से जुड़ी थी। तब गोरखपुर में कविता के आयोजन बहुत होते थे। तब रमेश चंद्र वहां के आयुक्त भी कवि थे। उनके कविता संग्रह 'स्वर पाषाण शिला के' का लोकार्पण मैंने किया था। उसका बीज वक्तव्य भी मैंने ही लिखा था। माधव मधुकर थे वहाँ। वे कवि-सम्मेलनों के बड़े मंजे हुए आयोजक थे। आकाशवाणी में भी कार्यक्रम होते रहते थे। गोरखपुर के कॉलेजों और स्कूलों में भी कविता के मंच तैयार होते रहते थे। गोरखपुर में सुरेन्द्र काले और देवेन्द्र आर्य भी मंचों पर बहुत जमते थे। वह डॉ. परमानन्द श्री वास्तव और डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी का शहर था/है। उनकी गौरवमयी उपस्थिति भी आयोजनों में दिखती थी। डॉ. तिवारी तो 'दस्तावेज' के यशस्वी सम्पादक भी रहे हैं। इस प्रकार गोरखपुर के आसपास के शहरों के आयोजन में जाने का अर्थ था एक दिन के लिये भी अपने इन आत्मीय रचनाकारों से मिलना। तब माहेश्वर तिवारी अच्छे दिनों के लिये संघर्ष कर रहे थे। वही बात बुद्धिनाथ मिश्र के साथ है। हमारी पहली भेंट कहाँ हुई—इतनी बार के मिलने-जुलने में याद नहीं है। एक जो बेहद अच्छी बात थी कि हम एक हवा-पानी-मिट्टी के थे। हमारा परिचय बहुत सहज था। लगता है, पहली बार उदय प्रताप कॉलेज के आयोजन में ही हम मिले। उसके बाद तो सब कुछ हमारे सगापन में बदल गया। हम सारे भारत के नगरों-महानगरों के कविता-समारोहों के सहभागी बने। बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, आसाम, मध्यप्रदेश (उन दिनों छत्तीसगढ़ नहीं था), मुम्बई, चेन्नई, दिल्ली कहाँ-कहाँ के समारोहों में भाग लिये। हमारी कविता-यात्रा जम्मू और श्रीनगर के आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्र में भी जारी रही। बनारस और उसके आस-पास हम जहाँ भी गये—यहाँ तक कि इलाहाबाद भी तो हम बुद्धिनाथ के ही घर रुके। वह केवल घर नहीं, मेरा नैहर हो गया था। बुद्धिनाथ का बड़ा ही हँसता खेलता सुखी परिवार था। दोनों पति-पत्नी के बीच आस्था और विश्वास के अटूट बन्धन को देखकर मन जुड़ा जाता था। बुद्धिनाथ के रस भरे प्रेमल गीतों की पृष्ठभूमि तभी मेरी समझ में आ गयी थी। उसकी तीन बेटियाँ और एक बेटा अभिलाष सभी तब छोटे थे—गुलदाउदी के 'झमटगर' फूल लगते थे।

हम सब एक दूसरे के गीतों की प्रशंसा करते थे, पर बखिया

उधेड़ना भूलते नहीं थे। 'नाच गुजरिया नाच' एक बहुत प्रसिद्ध गीत है बुद्धिनाथ का। मैं कहती थी कि अब उसके पाँव दुख गये होंगे, उससे दूसरा काम करने के लिये कहो और बुद्धिनाथ खूब हँसता था। माहेश्वर जी से मैं कहती थी कि धूप में पाँव जले तो घर ही क्यों याद आया। रास्ता के किनारे के पेड़, नदी, कच्चे-पक्के घर क्यों नहीं। उनकी संवेदना को उस समय हम परे रख देते थे कि पास की चीज नहीं दिखी और दूर घर चले गये। और आपको पता है कि माहेश्वर जी थोड़ा हँसे और चुप हो गये—ऐसा नहीं होता। वे अपने आस-पास सबको अपनी हँसी से सराबोर कर देते हैं—फिर वह आमने-सामने हो या फोन मोबाइल पर। माहेश्वर जी हँस-हँसकर ही गीतों की गहराई में उतरते हैं और वहीं से भावों और विचारों के सीपी-शंख चुन लेते हैं। गीतों में आत्मीय संस्पर्श के कारण अनूप अशेष एक मँजे गीतकार हैं। कई गीतकारों के बीच अपनी वस्तु दृष्टि और प्रभावी शिल्प-सौन्दर्य के लिए जाने गये हैं। नवगीत में उनकी भाषा विशेषकर पंक्तियों के माध्यम से बुने गये सौन्दर्य-बिम्ब अधिक आकर्षक हैं। कई बिम्ब तो ग्राम्य और नगरीय संवेदनाओं के सुख एक साथ ही देते हैं।

एक नाम जिनकी चर्चा मैं बड़े आदर से करती हूँ, वे हैं सत्य नारायण। वे हमारे वरिष्ठ गीतकार हैं। कई आयोजनों में हमारा साथ होता था जिनमें गोपीवल्लभ सहाय, परेश सिन्हा, मैथिली वल्लभ 'परिमल', मार्कण्डेय प्रवासी आदि होते थे। सत्यनारायण सबसे अलग और ऊपर थे। वे हंसते भी थे तो भीतर से गम्भीर रहते थे। उनकी भाषा, उनका व्यवहार जितने अपनापन से ओत-प्रोत होता था उतना ही उनका सान्निध्य शिष्ट और विशिष्ट होता था। सत्य नारायण जी से मिलकर कभी नहीं लगा कि हम किसी बड़े सशक्त, मँजे हुए गीतकार से मिल रहे हैं। उनकी आत्मीयता ने कभी अपने से कम वय वाले और नाम-यश की दृष्टि से भी कम उपलब्धि वाले गीतकार को कम करके नहीं आँका। उनकी दृष्टि में सबके लिये स्नेह होता था और वे सबको प्रीतिकर भी लगते थे। सत्यनारायण जी को नवगीतकार माना जाता है, पर बाद के गीतों में व्यवस्था की विसंगत दुरभिसंधियों और राजनीति की विद्रूप मुद्राओं के चित्र जो उन्होंने दिये हैं, उनको कौन जनवादी गीतकार अस्वीकार कर सकता है ! यदि राजनीतिक

प्रतिबद्धता आवश्यक नहीं हो।

बाद की यात्राओं में तो अनेक गीतकार जुड़ते गये, पर अपने प्रारम्भ काल से जिन गीतकारों के साथ मेरी गीत-यात्रा अनवरत चलती रही उनमें से कुछ महत्वपूर्ण नामों के बारे में मेरी स्मृति सजग हुई है। उन दिनों मंचों पर प्रभा ठाकुर, बरखा रानी जैसी कुछ कवयित्रियाँ भी दीखती थीं, पर पता नहीं बाद में वे कहाँ चली गईं। उनके कंठ-स्वर श्रोता पसंद करते थे। बाद के चर्चित नवगीतकारों में सबसे सुतीक्ष्ण नाम यश मालवीय का है जिसके गीतों से नवगीत की आगामी संभावनाओं के द्वार खुलते हैं। कुमार रवीन्द्र, मधुसुदन साहा, मधुकर अस्थाना, निर्मल शुक्ल, ओम प्रकाश सिंह, सुधांशु उपाध्याय, रामसनेही शर्मा, राजकुमारी रश्मि, यशोधरा राठौड़ आदि ऐसे नाम हैं जिनके गीत नवगीत के महापर्व रचते हैं, जिनके शब्द समय से संवाद करते हैं।

सम्प्रति 'लय हरापन की' नामक मेरा गीत-संग्रह प्रकाशित हो रहा है। इसके बारे में ऊपर के पन्ने में मैं संकेत कर चुकी हूँ। मेरे पति मुझको एक बहुत प्यार भरा घर-परिवार देकर गये हैं। मेरे भीतर की दुनिया को मेरा यही घर-परिवार भरता है। जो रिक्ति मेरे जीवन में आयी उसको यही अपने सान्निध्य से लगातार कम करता रहा है। मैं तो मानकर चलती हूँ कि समय साक्षी है। 'लय हरापन की' के प्रकाशन में पुत्र अरविन्द और पुत्री चेतना के मनोबल और श्रम मेरे सहभात्री रहे हैं। पुत्रवधु डॉ. विशाखा, पौत्री शालीना, पौत्र ईशान, नाती अपूर्व और नातिन श्रेयसी (यशी) की हँसी-खुशी ने मुझको शक्ति, साहस और धैर्य दिया है। अब इतना यही मेरा परिवार है। यही मुझको समाज और इससे बाहर की दुनिया तक पहुँचाता है और आत्मीय परिणति से जोड़ता है।

इस समय मुझको माहेश्वर तिवारी और बुद्धिनाथ मिश्र याद आते हैं जिन्होंने मेरे गीतों के प्रति आत्मीय शब्द दिये। हमारा परिचय, हमारा सम्बन्ध जितना मानवीय है उतना ही गीतात्मक भी है। अगणित कवि सम्मेलनों और कविता मंचों पर हमारी साझा उपस्थिति रही है। इनका कुछ लिखना अपने गीत-समय के साक्षी का लिखना है। इसलिये 'लय हरार्पन की' के गीतों के साथ इनकी सोच की लय शामिल करती हूँ। मुझको इसकी

खुशी है, उनको भी होगी। कभी-कभी पुरानी चीजें, पुराने आत्मीय कम मिलते हैं, कभी-कभी तो मिलते भी नहीं। इसमें लय की त्रिवेणी है - मेरे गीतों और उनके अभिकथनों की। आप दोनों के लिये स्नेह से अधिक दीर्घायु और क्या होगा।

नवगीत ने गीत की शिल्पगत जड़ता को तोड़ा और प्रथित-प्रचलित मुहावरों की सीमा का अतिक्रमण करते हुए उनको नयी शक्ति के रूप में ढाला। आत्माभिव्यक्ति और सामाजिक सरोकार की सोच के अंतर को बदल दिया। ये नवगीत के सबसे बड़े अवदान हैं। इसीलिये अपने वरिष्ठ और मित्र नवगीतकारों के लिये सम्मान व्यक्त करती हुई अपने परिवार और आत्मीय जनों के लिये शुभाशंसायें सौंपती हूँ। आपके अभिमतों से मेरे गीतों के रचाव को बल मिलेगा। इसलिये मैं उनकी प्रतीक्षा करती हूँ। स्नेह और शुभाकांक्षाओं सहित,

2, कैजर बंगला, कपाली रोड, कदमा
(कदमा-सोनाली लिंक), जमशेदपुर।
पिन-831005
मो.—09430917356

—शान्ति सुमन
अनंत चतुर्दशी,
7, सितम्बर, 2014

■

# लय हरापन की

# अनुक्रमण


| | | |
|---|---|---|
| 1 | गंध पहने हवा | 37 |
| 2 | वासन्ती दिन | 38 |
| 3 | गमकती रही बेला | 39 |
| 4 | धान के टूसे | 41 |
| 5 | एक बया आकर | 43 |
| 6 | कदम्ब की तरह | 45 |
| 7 | नदी में जल | 46 |
| 8 | एक कोमल प्यार | 48 |
| 9 | गेरू के रंगों से | 50 |
| 10 | कोई दुख अपना | 52 |
| 11 | फूट रहे धानों से | 54 |
| 12 | काढ़ती है रोशनी | 56 |
| 13 | मछुवा की आँखों में | 58 |
| 14 | लहरों की लय से | 60 |
| 15 | उड़ते पतंग से बच्चे | 62 |
| 16 | और कितने दिन | 64 |
| 17 | आँखों में दुनिया | 66 |
| 18 | एक रचाव है नदी | 68 |
| 19 | मछलियाँ बेचैन | 70 |
| 20 | मामूली से दिन | 72 |
| 21 | लावणी रचती हुई | 74 |
| 22 | साँसें गमक रहीं | 76 |

| | | |
|---|---|---|
| 23 | चैत के फूल | 78 |
| 24 | गंगाजल सा छलका | 80 |
| 25 | कनेरों की पीली धूप | 82 |
| 26 | धूप की गठरी | 84 |
| 27 | ठहर गयी हवा | 85 |
| 28 | नींद रात की | 87 |
| 29 | किताब की लिखत | 89 |
| 30 | सूखते जल-गीत | 91 |
| 31 | ऐसे भी दिन | 93 |
| 32 | साँस के शैवाल | 95 |
| 33 | हरी दूब सा | 97 |
| 34 | सपनाता है पेड़ | 99 |
| 35 | लगाव मन का | 101 |
| 36 | हवा नरम रेतों की | 103 |
| 37 | मन पलास के | 105 |
| 38 | रंग नहीं कम होते | 107 |
| 39 | जल स्वाती का | 109 |
| 40 | मिट्टी के घर में | 111 |
| 41 | जल पर खिंची रेखा | 113 |
| 42 | पाली बहुत बला | 115 |
| 43 | रेती की दीवारें | 117 |
| 44 | केवड़े की पंखुरी | 118 |
| 45 | खुशियाँ तितली हुईं | 119 |
| 46 | खुलकर हँसी हवा | 120 |
| 47 | आपसपन की बातें | 121 |
| 48 | मन की सुबहें | 122 |
| 49 | दीखेगी ही लाली | 124 |
| 50 | छोटी खुशी | 125 |
| 51 | केश खोले घाटी ने | 126 |
| 52 | रंगहीन नहीं होगी | 127 |

| | | |
|---|---|---|
| 53 | दिनों के पन्ने | 128 |
| 54 | फूलों में भाषा | 129 |
| 55 | जल अँजुरी में | 130 |
| 56 | बुनते साँझ-सबेरे | 131 |
| 57 | संगीत समय है | 132 |
| 58 | हवा घाटों की | 133 |
| 59 | छाँहवाले दिन | 134 |
| 60 | घर की ईंटों में | 135 |
| 61 | दादी थी तो | 136 |
| 62 | आंगनवाले इन्तजार | 138 |
| 63 | किताबें धूपों की | 140 |
| 64 | नरम हथेली पर | 141 |
| 65 | उपमानों में | 143 |
| 66 | बहुत उदास हवा | 144 |
| 67 | पीतल के गहने | 145 |
| 68 | हवाओं की आँखें | 146 |
| 69 | रेशम सी कोमल | 147 |
| 70 | असह धूप में | 148 |
| 71 | गिनते दिन | 149 |
| 72 | सेंवार-शंख-सीपें | 150 |
| 73 | हाथ के हौसले | 151 |
| 74 | बहुत दिन हुए | 153 |
| 75 | आँखों की लाली | 155 |
| 76 | फूही सुबह की | 157 |
| 77 | पीतल की कलशी | 158 |
| 78 | छोटी-छोटी खुशी | 159 |
| 79 | दोना में अड़हुल सा | 160 |
| 80 | धार नदी की | 162 |
| 81 | फूलों की खुशबू | 163 |
| 82 | रंग की लय में | 165 |

| | | |
|---|---|---|
| 83 | केश झाड़ती लड़की | 166 |
| 84 | हरियाली के जेवर | 167 |
| 85 | सतहें हरी झील की | 168 |
| 86 | रंगवाले सिलसिले | 169 |
| 87 | खुशियों के झालर | 171 |
| 88 | धान के रंग में | 172 |
| 89 | नीचे गरम हवा | 174 |
| 90 | मन की खुशियाँ | 176 |
| 91 | सूरज उगा नदी पर | 178 |
| 92 | सुगंध भर लाना | 180 |
| 93 | छू लो आसमान | 182 |
| 94 | तुम लिखती हो | 183 |
| 95 | लय हरापन की | 184 |


■

# गंध पहने हवा

गंध पहने हवा तेरे द्वार पर ठहरी,
तुम जगोगी तो बजेगा हँसी का नूपुर
धूप की डोली उठाये
आ गयी चिड़िया सुबह में
प्रेम के आखर नहायी
जिद सँभाले सात तह में
अगरू-गंधों को पिये छोटी खुशी दुहरी
खिड़कियों के पार से झरने लगे इंगुर
रात के कुहरे उतारे
शंख जैसे बादलों को
सुबह रागों में बदलती
पांच जोड़े मादलों को
नींद के पाँवों महावर लगा दोपहरी
धूल के संग फागुनी अनुबंध आते उड़
साँस जैसे पहनती हो
प्यार की रंगीन भाषा
हल्दियों में घोलती हो
चंदनों का नरम 'कासा'
चूड़ियों की खनक वाली हँसी जो लहरी
हवाओं में लगे उड़ने अबीरों के सुर।

■

24.09.2011

# वासन्ती दिन

हरे-भरे वासन्ती दिन थे
फूले थे कचनार
इस पूंजी पर ही जंगल को
पार किये सौ बार

छत पर चिड़ियों की गपशप
घर में बच्चों की हँसियाँ
खिड़की-दालान लाँघती
आती-जाती वे खुशियाँ

याद बहुत आते हैं दिन वे
बाँधे वन्दनवार

दफ्तर की थकान कभी
आ जाती थी घर में
कागज की नावें छोटी
हलचल भरती पलभर में

पुरइन के पत्तों पर जैसे
बूँदों के मल्हार

छोटे-छोटे सुख लगते
आँखों में रचे सुहाने
तब समय वहाँ लगता था
मन की मणियों को गिनने

भरे हुए थे अपनों से ही
साँसों के संसार ।

■

- 27.06.2014



शान्ति सुमन

# गमकती रही बेला

रात भर गमकती रही बेला
बहती रही रातभर हवा

सुबह सूरज ने मुँह धोया
धूप की दूकान लगी
बौरों की खुशबुएँ फैलीं
आँख मलते बया जगी

दिन दुपहरी सजा हुआ मेला
हथेली खोल हँसती जवा

छोड़कर गयी थी साँझ में
शीतों की सर्द कथाएँ
कोई निशान नहीं पँखुरी
के रंग में लय गाये

सुख वही जितना जिसने पाया
धुल गई आँखों में शिकवा

हाथों से गंध छूते ही
आँख तक लाली फैली

उजलायी मन की चादरें
धराऊ भी मटमैली

शोर करता यादों का रेला
तट को तोड़ उमड़ी रेवा ।

■

13.12.2011

# धान के टूसे

धान के टूसे निकलते
हँस रहे हैं फूल जैसे

नींबू वाली चाय हाथ में
खुलते आसमान के नीचे
क्या कुछ नहीं नदी के वश में
सोच रही है आँखें मींचे

उड़ रही है हवाओं में
खुशबुओं की धूल जैसे

मेले से आई है लगता
लौटी सपनों के बगान से
सोते-जगते मन में बनते
खुशियों के ऊँचे मकान से

वन कदम्ब हिले बरखा
में नदी के कूल जैसे

नहा धोकर प्यार के जल में
घोंसले से निकलती चिड़िया
फिर छिड़क देती टहनियों पर
सातरंगों से भरा पुड़िया

विंधेगा उजली हँसी से
मेड़ों पर बबूल जैसे ।

■

07.08.2012

# एक बया आकर

अगहन की मीठी धूप सरीखी
चलकर आती है
एक बया आ-आकर इस घर को
रोज जगाती है

मिलते ही आंखों के
दूर छिटक जाती
दाना भी रख दो तो
पीछे हट जाती

धीरे भरी गोदवाली पुरवा
हँसकर जाती है

साथ-साथ बातें कर
सुनती सुधियों की
घर में भरी तिजोरी
है नव निधियों की

करविल हो गेंदा, जूही जैसे
घर गमकाती है

नहा प्यार के जल में
लय सी ओसों की
उड़े फूल बाँसों के
सुगंध कोसों की
चिड़िया की पाँखों में उड़ान की
तान सजाती है ।

■

07.08.2012

# कदम्ब की तरह

बहुत दिनों से थी खाली पड़ी छत
उड़ता आया दिन कबूतर की तरह
हवाओं में लहराती थीं पत्तियाँ
देखा बाँस में फूल आ गये
फूही के मोती से सँवरे बाग-वन
चिड़ियों को बहुत-बहुत भा गये
पेड़ हरियर डालवाला लिखा खत
हिलता हुआ आया सपनों की तरह
पहले से अब नहीं दीखते कहीं भी
गीतों से खेत में लिखे गाँव
सरसों के रंगों में पीले चूनर
मछलियों के लाल रंगे पाँव
शेष है दूब की गमकने की लत
छन भींगा आया कदम्ब की तरह
कुहेसों में भी दीख जाते सामने
उड़ान के लिये जैसे रास्ते
रुकी होगी चिलचिलाती धूप में
गंध कोई उसके ही वास्ते
पुलों से बनती पानी की संगत
नेह लौटा पुरानी शपथ की तरह ।

■

30.08.2012

# नदी में जल

हँस रहा मौसम जैसे
नर्मदा में जल लहरता

आधा खुलता रूप कि जैसे
झरोखों से धूप छनती
शून्य में कुछ भी नहीं सुनो,
रूप से जिन्दगी बनती

तुम जब देखो वहीं पर
ज्वार रागों का उमड़ता

हुआ नहीं होता यह सब तो
जल नहीं होता नदी में
बैठती चिड़िया अकेली ही
पंख पल के ले सदी में
चिलचिलाती धूपों में
छाँह को प्रेम सिरजता

प्यासे लौट जाते कुएँ से
होंठ जब सूखे समय के
पेड़-पौधे जंगलों से ले

बड़े मनसूबे अभय के
है भागवत सा एक कोई
समय-संसृति में ठहरता ।

■

30.08.2012

# एक कोमल प्यार

कभी नदी के तट सरीखी
कभी उफनी धार
रंगों से भर दिया तुमने
एक कोमल प्यार

जिन्दगी जैसे गमकती
जुही की हो पंखुरी
एक इंगूरी कथानक
लिख रही हो बाँसुरी
गूँथती सुरीली उसाँसें
मोतियों के हार

लाल पंखों पर बया के
उतरती आई हवा
रात के माथे चमकती
चाँदनी की परिकथा
छन्दों से लिखते रहे हैं
सामने कचनार

हरी दूबों पर सुबह की
गीत बन किरण-लाली

खेत-वन में बुन रही हो
सगुन जैसे मराली
गोधूलि के माथे सँवरता
दिवस का उपहार ।

■

28.09.2012

# गेरू के रंगों से

पेड़ों पर उतरा है मौसम
चिड़िया जान गयी
प्यार नहीं छिपता है जैसे
मन से मान गयी

भींगे हुए कदम्ब के वन में
गाती हुई हवायें
पलथी मारकर धूप उझकती
मुसकी लिये जवायें

औचक लहरें तट पर आकर
बात अकान गयी

बादलों का रुक रुककर आना
और चले जाना
ललाये गेरू के रंगों से
अनुबंधों का लिखना

नीड़ों के तिनकों को चुनते
हुई थकान नयी

दिनों भर सूरज से बतियाना
चंदा से रातों में
कोई समझे कहे तो किससे
उलझी है बातों में

बाँट रही है अँजुरी भरकर
खुशियाँ मिलीं कई ।

■

19.09.2012

# कोई दुख अपना

जब भी चुप तुम रहती
बहती एक नदी तुममें दिखती है

बहती वहाँ चुपचाप
धार को भीतर ही मोड़े
लिख भी देती लगते
सहज सारे कागज कोरे

रेतियों पर उतरती
अपनी आँखों से पानी लिखती है

तुमसे मुझको जोड़े रहता
एक कोई दुख है अपना सा
उसकी भाषा धारदार थी
अब तो हुआ चुप सपना सा

कभी नीली रंगत भरती
दिन को कंधे पर टाँगे रखती है

घाटी की सड़कों पर जैसे
हरियाली में बच्चे खेले

आँचल बांधे माँएँ
दिन दुपहरी रोटी बेलें
महाजाल सी तनती
छोटी कोई धूप-कथा लगती है ।

■

07.08.2013

# फूट रहे धानों से

फैली धूप शरद की गोबर लीपे आंगन में
धोये गेहूँ छठ के सुखा रही है दादी माँ

हलकी हवा उड़ाती जैसे
सूखे कपड़ों को
हरकारे ऊँची कर देते
छोटी खबरों को

मेले में बैलून पकड़ते भाग रहे बच्चे
दौड़ रही है पीछे आंचल बांधे उसकी माँ

कभी-कभी अनुकूल न लगता
मौसम पानी का
आसमान जैसे ताम्बे पर
मौसम चानी का

बतियाता पुरइन से पोखर का जल मटमैला
फूट रहे धानों से आता मीठा सुर धीमा

घर के खरचे बाबूजी के
वेतन रुके हुए

हड़तालों से भाई के पग
जैसे बंधे हुए

कान अकाने दिन भर रसता देख रहे आंसू
भाय, एक तेरे बिन बुझी-बुझी है अपनी माँ ।

■

24.11.2013

# काढ़ती है रोशनी

साँझ होते क्रोशिया से
काढ़ती है रोशनी
खुशबुओं के फूल पहने
गाती हैं अंगुलियाँ

हरी चादर में लिपटकर
सो रहे हैं बाध-वन
तितलियाँ लाई चुराकर
मौसमों से बाँकपन

पेड़ पर बनते घरौंदे
खुश हुई हैं डालियाँ

गाढ़ डाले मेघने जब
रंग सारे बैगनी
लाज से भर अलसियों ने
बिछाई वह आसनी

खेत में मिलती हवा से
झुक रही हैं बालियाँ

देखती है जिद हवा की
उड़ाएगी ओढ़नी
माथे पर आसमान की
धनुष सी भौंहें तनी

इन दालान-खिड़कियों पर
किरन बनती जालियाँ ।

■

09.12.1993

# मछुवा की आँखों में

हरियाली के बीच खड़ी हो
नदी, धूप, मौसम लगती हो

नृत्य देखते जैसे पाँव
थिरकते हैं लड़की के
लय में लगे उतरते जाते
किरनें-गीत खिड़की के

आज स्वयं से लगी बड़ी हो
घटा, मेघ, बरखा लगती हो

टप्परवाली गाड़ी कोई
कभी गुजरे गाँवों से
हीरामन की आँखें, बाँहें
मुसकियाँ सिर पाँवों से

कड़ी खुलती घुंघरू की हो
चौथी कसमों सी लगती हो

इन्द्रजालों से आँखों के
आगे रूप-कथा रच देता

मछुवा की आँखों से जल में
शंख और सीपी कर लेता

फागुन की रसभरी झड़ी हो
चंदन की सुगंध लगती हो ।

■

02.12.2013

# लहरों की लय से

गीतों में छन्दों के जैसे
पत्ते आये हैं पेड़ों में

आधा दिन बरसा है बादल
थमी नहीं वाचाल हवा है
कानों-कानों में ही फैला
लगता कोई तो शिकवा है
लहरों की लय से जागी है
मीठी सी तान मछेरों में

गंगा-यमुना दो धारायें
हरदम लोग यही तो माने
दोनों की पीड़ा एक मगर
इसको तो कोई पहचाने

मन कहाँ-कहाँ बंध जाता है
बँटकर इन साँझ-सबेरो में

कितने यतन किये रखने को
सब पीले फूल हथेली में
मन तो उलझा-उलझा रहता
दिन-दिन भर किसी पहेली में

कितना टूट-टूट बह जाता
सागर के गहन थपेड़ो में ।

■

05.12.2013

# उड़ते पतंग से बच्चे

भींग रहा कंगन पानी में
पानी धुलता है
पनिहारिन हँसती तालों में
मोती खिलता है

चिड़िया के घर में उत्सव है
दाना-पानी का
है मिलान तितली पंखों से
चूनर धानी का
बड़े यतन से मन माने का
माणिक मिलता है

अगुआरे खिलती है चम्पा
बेल मालती की
छोटी खुशी दुखों के दिन की
रहती है फीकी
सूरज की ढलानों के संग
दुख भी ढलता है

पतंग से उड़ते हैं बच्चे
माँ की बाँहों में

घाटी में लड़ते हुए पिता
दिखते छाँहों में
चलो चला लो भी जीवन को
जैसे चलता है ।

■

08.12.2013

# और कितने दिन

हाथों में आ गये पंख तितलियों के
रंग पहचानने लगी लड़की

उंगलियों पर गिन रही
दिन-माह के सपने
और कितने दिन हैं इस
आग ही में तपने

एक टुकड़ा उजाला दूध में धोया
कहाँ जो खोया जैसे बिजली कड़की

तब तो आसान से थे
दुख ही बड़े अपने
अब आते पकड़ में ही
नहीं सुख ये इतने

दीखती है धूप अटकी जालियों में
पास आई लगी दूर सरकी

पाँवों के साथ चलते
रास्ते दूर कितने

दीखे तो अलग हम थे
पास जिनके उतने

बदलियाँ हों धूप वाली द्वार पसरी
जानते तनों से बात जड़ की ।

■

09.12.2013

# आँखों में दुनिया

बहुत दुखों के दिन थे वे
मगर पास थे हम

अपनी थीं कुछ खुशियाँ
बेहद जानी पहचानी
अपने सादापन में
हमने थी की मनमानी

थोड़े उजले कपड़ों में
रमता था मौसम

पंखों के तितली के
पीछे बहुत बार दौड़े
पता नहीं था जिनगी
भी बरसाएगी कोड़े

नये-नये धन मिलने से
मन में जगे भरम

आँखों में थी दुनिया
थीं दुनिया भर की आँखें

भीतर-बाहर घर के
उड़ती चिड़िया की पाँखें

कभी न थे जी में इतने
नदी-नाव-परचम ।

■

14.12.2013

# एक रचाव है नदी

पन्ने लहरों के बदलती हुई
एक किताब है नदी

किनारों को आँखों से बाँधती
उतरती है पहाड़ों से
चिड़िया के पंखों को सहेजती
मन बसी है कहारों के

हवाओं में रंग घोलती हुई
एक लगाव है नदी

महाभारत से निकली रोकती
भीष्म के उन वाणों को
खूब आँखों से भी तेज करती
रहती है जो कानों को

गहनों को फिर से तोलती हुई
एक जवाब है नदी

साँसों में गीतों को गूँथेगी
भरती कविता की जगहें

बचपन के मन को सँभालती सी
छूती कई अतल सतहें

अनबोली सी भी बोलती हुई
एक रचाव है नदी ।

■

23.12.2013

# मछलियाँ बेचैन

मछलियाँ बेचैन जल में
और तट पर जाल बुनते हुए मछुवे

जिन्दगी जी नहीं सकती
जिन्दगी के वास्ते
एक होकर भी अलग हो
जाते जिनके रास्ते

आज ले जा रहा कल में
बिखरे से सभी नीड़ के तिनके हुए

भान जिनके थे नहीं वे
जमा हो आपदायें
नहीं आता आज कोई
सगा भी बिन बुलाये

अब लहर उठती अतल में
नहीं रुकती जतन लाख जानकर किये

कहलाती मरीधार वे
नदियाँ जो सूख चलीं

रेतों पर जगती कविता
लगती है कभी भली

कीचों को रचो कमल में
जल जायेंगे पाँव आगे कई दिये ।

■

25.12.2013

# मामूली से दिन

मामूली से दिन थे अपने
कितने खुश थे हम
धीरे-धीरे लगा बदलने
घर का ही मौसम

साधारण से कपड़े भी
बड़े कीमती लगते
तन-मन के सुख-तोष सभी
लगते मिलते-जुलते

साथ-साथ रहने का सुख भी
लगता था अनुपम

धूप बचाने की खातिर
चादर की छाँह लिये
खुशियों के कितने मोती
ही हमने बाँट दिये

लगते हम राजे-महराजे
बहुत लगे भी कम

गिनते रहते आँखों से
ईद और यह होली
देख नहीं पाते किसने
कितनी खुशबू घोली

याद बहुत आते हैं कलके
रंग भरे सरगम ।

■

17.12.2013

# लावणी रचती हुई

जब किनारे खड़े होंगे नाव लेकर
नदी की धार तुम बहती हुई आना

पेड़-पौधे और ये हरियालियाँ
नेह में रचते रहे हैं छंद
पंखुड़ी से फूल की इस राह में
बो रहे हैं प्यार के मकरंद

पुकारेगा जब खुशी से नाम लेकर
लहर में लावणी रचती हुई आना

हो गया मन बहुत एकाकी अभी
जब बढ़ी है यहां इतनी भीड़
वहाँ मरूस्थल जहाँ रूकता वहीं है
माधवी की खुली आँख अधीर

हवा आएगी जुही की गंध लेकर
मोगरे सी खिली हँसती हुई आना

खेत परती, बीज लगे अँखुआने
किंशुकी रंग भरे कनेरों पर

पहाड़ों के पार से निकले किरन
पढ़े नेह सने गीत सस्वर

शंख फूँके ओस-भींगे कंठ लेकर
खुशी की आँख सी रचती हुई आना।

■

31.01.2014

# साँसें गमक रहीं

हर चौराहा पर हंगामा
फागुन आया है
कितना तो जाना पहचाना
फागुन आया है

बाग-बगीचों में चिड़ियायें
कब से चहक रहीं
धूप-हवाओं की बैठक में
साँसें गमक रहीं

न्योता मंजर ने चौगामा
फागुन आया है

नये सगुन दीखे हैं अबके
सेमल-कोंपल में
नाच रहे पत्ते बाँसों के
पीली हलचल में

पीला रँगा हुआ पाजामा
फागुन आया है

पिछले सावन ने सींची थी
अब है बची नमी
हरे मंच पर लाल फूल की
महफिल नयी जमी

खुशबू ने परचम को थामा
फागुन आया है ।

■

08.02.2014

# चैत के फूल

हँसते है मासूम बड़े से
ये चैत के फूल
हँसा रहे रेतों को जैसे
बरसा का पानी

हल्दी चंदन लगी देह पर
फिसली कच्ची धूप
कोंपलों में नये बाँसों की
हरा निखरता रूप

बदली कोई मन की करती
फिर से मनमानी

ढरकती किताबों पर जैसे
आलता की शीशी
हवा अभी निकली अजान पर
देह अदिखी उसकी

घर की खुशी कमाकर लौटा
फिर से रमजानी

हरे हो गये खेत-बाग में
पिघलता है कंचन
चिड़िया ने नीड़ों से देखा
गीतम गीत उपवन

रंगों के सूतों में उतरी
है भरनी-तानी ।

■

02.01.2014

# गंगाजल सा छलका

एक नाव कागज की
तिरती मन के पोखर में
कैसा हो जाता है
मन बेचैन क्षण भर में

लाख पकड़ने की है कोशिश
नहीं हाथ में कुछ भी आता
अपने भीतर एक भरोसा
का है तन जाता यह छाता

बारहखड़ी दुखों की
जैसी लगती है घर में

जब भी ये लहरें हुई नरम
मन तो गंगाजल सा छलका
आती-जाती खुशियों के सुर
से ही सुर मिलता इस पल का

यह मजबूत गाँठ है
अब टिकी सलोने कर में

नावों की अनुभूति पुरानी
हैं नित नयी कथाएँ बुनती
वनपाखी की पाँखों में है
किरने जैसे ये सुख बोती

भाग रहे सपनों के
फूल सँवरते दुपहर में ।

■

11.08.2014

# कनेरों की पीली धूप

यह अहसास अकेलेपन का
ये खुशबू के झोंके
मिला लिया सुख-दुख को धीरे
मन ने ही आपस में

फूलों की रंगी पंखुड़ियों
को जब हवा मिलाती
लगता खुशियाँ कई पर्व की
भाषा में उजलातीं

चुन दाना पाखी खेत बुने
है आगे चौरस में

मखमली कनेरों की पीली
धूप उगी छाँहों में
सपनों की है उम्मीद लिये
खड़ी हवा राहों में

लेगी सच की बाँह पकड़ ही
बातों के समरस में

झूठ बड़ा यह फूल खिला है
पर खुशबू उड़ी नहीं
चहके हैं वनपाखी ये तो
हैं बड़े सबूत कहीं

पहचान नयी फिर चमकेगी
बाँध सगुन को वश में ।

■

14.02.2014

# धूप की गठरी

एक लड़की सुबह उठती
धूप की गठरी उठाये
निकलती घर से

रास्ते में बात करती धूल से
चौतरफ निखरे हुए बबूल से
आँख में चिनगी सँभाले
निकलती घर से

समझाती नदी, चिड़िया धूप को
बिचड़े रोपे धान के रूप को
देह की दुनिया बचाये
निकलती घर से

कौन उजला था मौसम उन दिनों
अनदिखे भी दीखा था पल छिनों
आँख के जल में नहाये
निकलती घर से

गीत ताजे मन से गुनगुनाती
सहज नदी-झील-झरने जगाती
कई जिद मन में जुगाये
निकलती घर से ।

■

18.02.2014

# ठहर गयी हवा

ठहर गयी थी हवा वहाँ पर
पेड़ों ने जब किया इशारा

थी हिली नत हरी पत्तियाँ
चुप जैसे तैयार टहनियाँ
झंझा आने की खबरों से
दिखी बहुत अनजान मछलियाँ

लहराये खुशबू ने परचम
नदियों ने सौ बार पुकारा

नमी कहीं पर नहीं दीखती
सूखी हैं मौसम की आँखें
चिड़ियों ने ही आगे बढ़कर
ढेरों ताजे बीज तलाशे

जलते पाँव जमीं पर रखते
मिलें न ऐसे दिन दोबारा

अब तो रात-रात भर बारिश
घर को ही तालाब बनाये

बादल कहाँ अभी तक गुम थे
एक साथ जैसे घिर आये

जल पर कमल चाँदनी जैसे
सपने में खिल गया अनारा ।

■

19.02.2014

# नींद रात की

पहचानेंगे कैसे उसको
जिसने छीनी नींद रात की

पहले छीने हँसुवे
जिनसे काटी हमने फसलें
खौल रहे अदहन से
बातें करते हैं ये तसले

देखे खेतों-खलिहानों को
मिटती जाती धुन जमात की

हाथ अभी बढ़ते हैं
पंख पकड़ने को सुग्गा के
अभी उधार चुकाया
बाजार खरीदे तमगा के

आँखों में झरते महुवों की
कितनी यादें हुईं बात की

सूखे खेत पड़े हैं
अब तो तरसाती है बरखा

सपनों की बेचैनी
हमने सबको कितना परखा

सूखती दूधिया बाली में
हलचल होती नये भात की

■

19.06.2014

# किताब की लिखत

फूल हँसे तो हँसे
उन्हें भय है लोगों के हँसने से

इस निष्कम्प शिखा से दिन को
हवा नहीं जिसको छू पाती
घर को लौट रही लड़की को
इस किताब की लिखत डराती

चीलें भले चहके
वे बेचैन बच्चों के चहकने से

धुआँ दिशाओं में जब फैले
खुश लगते आँवे जमीन पर
हवा साथ देती अशीषती
कच्चे घर की लय जहीन पर

बारूद से दहके
डरते हैं घर की आग दहकने से

समझे हवा पेड़ की भाषा
देती छोड़ हिलाकर डालें

उदास नारियलों के पत्ते
यहाँ-वहाँ कितने दुख साले

माधवी जो गमके
उन्हें भय है अब अधिक गमकने से ।

■

19.06.2014

# सूखते जल-गीत

बैठी हैं चिड़ियायें
नदी के मुहाने पर

सूखते जल-गीत जैसे
टूट जाते धूप के गहने
डूबकर ही नहाती है
रात मकर उजास पहने

दूब कनखियाये
ऋतु के बहाने पर

हवा ने मांग सावन से
चमक चाँदनी की हँसुली
कौंध गई है माथे पर
बिजली की चमचम टिकली

भरी थाप खुशबू ने
इमन गुनगुनाने पर

अगहनी हवा बहते ही
गूँजते हैं नाद रथ के

रच देते हैं पेड़ हरे
शुभाशीष इस पथ के

एक गूँज बची हुई
समय के तराने पर

■

17.06.2014

# ऐसे भी दिन

आयेंगे ऐसे भी दिन आयेंगे
जब बतियायेंगी दिन भर चिड़ियायें
फूलों के भी कुरते लहरायेंगे

भर देंगे सूनापन को
कुचरेंगे जब कौवे
पीली सी धूप सुरीली
होंठ में रचेंगे वे

बिन सोये वनपाखी उड़ जायेंगे
फसलों की दिन भर गूंजेंगी तानें
नीली तितली के मन अकुलायेंगे

भर देंगी फिर से घर को
मिलकर धूप हवायें
देकर छत पर गलबाँही
बुनती हुई कथायें

रंगों के पेड़ अभी उग आयेंगे
माथे पर लिख सुबहों के गीत हरे
दिन हल्दी चढ़ने के सुख लायेंगे

फूटती धार मरुथल में
मन ने काजल आँजे
लय चुराकर खुशबुओं की
हैं कलियाँ चुप लाजे

फिर घाटी, नदी, ताल सपनायेंगे
खत नया चुराकर तितली फूलों का
छिप जाये तब नये गीत गायेंगे ।

■

17.06.2014

# साँस के शैवाल

नदी के जल पर गिरे हैं
लालसर के नये डैने

उदास हैं तब से
साफ जल नदी के
शंख-सीपी सभी
शोर में सदी के

पुलिन मेघों से घिरे हैं
सुर लगे हैं बहुत पैने

गंडकी पालती
आशा मौसम की
दे रही बुलावा
परछाईं गमकी

आज फिर लगते फिरे हैं
दिन जुगाकर रखे इतने

टूट गिरे डाल से
पत्ते मन मारे

समझ मन हवा का
प्रेम से पुकारे

घाट पर तब से पिरे हैं
साँस के शैवाल कितने ।

■

23.06.2014

# हरी दूब सा

नहीं खिला है किसी पेड़ पर
या कि गिरा है आसमान से
हरी दूब सा लतर रहा है
प्रेम या कि जीवन है घर में

कोई उमर न होती मन की
तन चाहे जितना भी थक ले
लम्बे-चौड़े खेत-बाध में
धानों जैसा कोई पक ले

मुस्कानों में सहज तलाशे
बुरे न होते दिन मरुथर में

जहाँ नहीं साँकल है खुलती
जाने पर है रोक हवा को
वे दो बोल नेह के मीठे
सहज बुलाते खिली जवा को

हरापन रचता मेंहदी-सा
अंतस के सुख बुने पहर में

दरवाजे पर होता कोई
लाल रंग में नाम न अपना
फिर भी सुख की नींदें अपनी
रचती है सपने पर सपना

घाट बंधे रिश्ते-नातों के
बहा किये हम इसी लहर में ।

■

23.06.2014

# सपनाता है पेड़

आते लोग तोड़ ले जाते
उसकी हरी टहनियाँ
सोचा करता पेड़ इन दिनों

दिनों में शीतल छाँह
नरम हवायें रातों में
कितनी गपशप, सुख-दुख
बुनते रहते बातों में

एक बूँद आँसू ले जाते
सूखी देह पसलियाँ
रोता रहता पेड़ इन दिनों

लग जाते गिरवी में
ये पत्ते-उसके गहने
सुखों पर हैं साँकलें
स्याह धुआँ ही जड़ पहने

बहने के पहले सुन लेते
मछुवों संग मछलियाँ
सपनाता है पेड़ इन दिनों

जब कला रहे आगे
हो बाजार पीठ-पीछे
रहती पहचान बनी
साँसों को आगे खींचे

धूप, हवा, मौसम की वंशी
धुन में कँपी उंगलियाँ
जागा करता पेड़ इन दिनों ।

■

14.06.2014

# लगाव मन का

पेड़ों से लगते दिखने वे
हो जाते बहुत बुरे हैं दिन

संबंधों की नमियाँ
जमा हुई जो बरसों से
प्रेमल लगाव मन का
कल लगते परसों से

धुआँ-धुआँ से हैं लगते वे
हो जाते बहुत कड़े पल-छिन

खतम नहीं होने को
जो भी वह आपसदारी
लगता आँधी ने ही
है कोई बात बिगाड़ी

करुणा पर ईंटें धरते वे
हो जाते बहुत डरे लेकिन

थे संग फूल के ही
कांटों वाले वे मौसम

रिश्ते बाजार हुए
चीजें ही बने रहे हम

अपनापन को धूल करें वे
बनकर आये तो ये दुर्दिन ।

■

16.06.2014

# हवा नरम रेतों की

आज सुबह से सुनती चिड़िया
पुरवाई के ताने
मन ही मन वह जान गई है
नेह-छोह के माने

बूँदा-बाँदी का छन हो
या उड़ते पत्ते पीले
गाढ़े रंगों के बादल
मधुवाली शाखें ढँक ले

छोटी बात बड़ी है दिखती
लय में होते गाने

पास धूप लगती लगने
हरे-हरे धनखेतों की
वहाँ पटेरों पर सोती
है हवा नरम रेतों की

मीठा बोल एक सुलगाता
मन में कई तराने

कभी देखने का मन हो
कागज बन जाती आँखें
कोई समय हरसिंगार
की बन जाता है शाखें

इतनी सी बातों पर जाता
मौसम नदी नहाने ।

■

18.06.2014

# मन पलास के

पीपल के पात गिरे हैं
टूटे हैं मन पलास के

पंखुड़ियों पर लिख-लिख बाँटे
रंग-रंग नेह धुले मन के
कथा बाँचने में अंतर की
धूपों ने गीत लिखे वन के

बादल शाम से घिरे हैं
सुने नहीं सुर उँजास के

याद नहीं दिन पखवारे का
चिड़िया तो कब से दिखी नहीं
मोतीचूर हाथ में भरकर
बच्ची तब से खोजती रही

फूल दो जल पर तिरे हैं
मेड़ हिले हाथ कास के

सिर नहीं उठाता सूरज है
गलियारे का नीम ऊँघता

गीतों की बस्ती के घर में
आया मौसम हाल पूछता

हाथ में लौ के सिरे हैं
पनपते उछाह घास के ।

■

20.06.2014

# रंग नहीं कम होते

छनकर आते जो कुहरे से
उन गीतों से जोड़ समय को
बुनो नही भीतर के भय को

पीली पंख तितलियों के
रंग नहीं कम होते
पाँव रोकते गेंदा की
खुशबू पर मन रमते

कोई कभी नहीं दुलराता
सूनापन के थकते वय को

अभी उड़ानों पर टिक जाती
दूर-दूर से सबकी आँखें
भीतर की आकुलता से ही
कट जाती हैं सभी सलाखें

समय-नदी में बहना ही है
गिनना छोड़ो नहीं अनय को

लिखना ही है दिन खुशबू के
नाम उन्हीं छोटे पौधों को

घटता जो है दिखता भी है
भले दाम बढ़ते सौदों के

काँप रहे पुल पर चिड़िया ने
बाँध लिया पंखों से जय को ।

■

24.06.2014

# जल स्वाती का

ओस भींगे दिन तुम्हारे
कागजों में बँधे तारे
राह पर दिखती नदी है
इन दिनों

खुशबू नये अनुबंध की
जिस रंग में घुली होगी
भा गयी थी वह बहुत जो
बात अब भी बची होगी

देवता के दान थे वे
नित नये से सुख के लिये
केबड़े में गंध आधी
इन दिनों

हवा के बहते हथेली
खोल देती पत्तियाँ
तैरने के साथ जल की
हैं थाह लेती मछलियाँ

बहती लहर को देखती
पीड़ा नदी की जानती

खुशी कुहरों से उतरती
इन दिनों

चूड़ियों की खनक से भी
पहनती कुमकुम उदासी
खुलती शब्द की साँकल
नीर जब नयन में बासी

जिन्दगी जल स्वाती का
खुली हथेलियाँ रखती
इन दिनों ।

■

25.06.2014

# मिट्टी के घर में

मिट्टी घुलती है पानी में
खुशबू पंखुड़ियों में
तुमसे अधिक हँसी तुम्हारी
घुलती है लड़ियों में

जब भी फूल गिरे डालों से
होती है वह छोटी घटना
झुक जाती है सघन उदासी
रात बाढ़ की घर का कटना
खुशी-खुशी जीती गरीबनी
इन सूनी घड़ियों में

मुसलाधार मेघ जो बरसे
मिट्टी के ही घर में रहना
बहती हुई फसल को देखे
आस-पास बैठे बतियाना

पड़ने वाला अब है फाँका
लोग-बाग-चिड़ियों में

गहरी सी आँखों में जब भी
मन उदास हो आँसू छलके

आजादी पर भाषण सुनने
चले गये हैं सपने कल के

मुखपृष्ठों पर छपते रहते
रँगे पाँव परियों के ।

■

14.06.2014

# जल पर खिंची रेखा

राजा तो राजा होता है
कितना कुछ उसको करना है

कई-कई शहरों में ऊँचे
उनको राजभवन बनवाने
कई-कई बीघे खेतों के
मालिक ये बनते मनमाने

अपना देश बहुत छोटा है
धन विदेश में ही रखना है

राजा को जब नींद आ रही
सारी रात प्रजा जगती है
गाँवों के नीमों से छनकर
सीधे हवा वही उगती है

बेटों को उनके देखा है
सड़कों पर वैसे रहना है

घर में रहकर कैद लड़कियाँ
अपनी आजादी को तरसे

कभी न थकते वे विकास की
रंग-रंग की बातें करते

जल पर खिंची हुई रेखा है
जब चाहे जैसा बनना है ।

■

22.06.2014

# पाली बहुत बला

हमको पता चला है कैसे
यह मौसम बदला
बना बनाया सपना जैसे
आते समय टला

गाँवों की गुमसुम पगडंडी
लगी बोलने सच को
पक्की सड़कों ने आकर ठग
लिया सहज हम सबको

बीच सड़क तक आते कैसे
यह सूरज फिसला
जिसके होंठों पर न कभी था
शिकवा नहीं गिला

खाकर अब आती हैं कसमें
चिड़िया उड़ान भरने
नीड़ों पर अब नहीं भरोसा
जीने को या मरने

ऐसा हुआ मिजाज हवा का
टूट गिरा गमला

देखा-देखी में ही कल से
हुआ तेज हमला

ये ऐसे खुशनसीब सपने
जब हंसों से बादल
तैरें मानसरोवर में गा
कोमल सी एक गज़ल

हम तो जान गये हैं हमने
पाली बहुत बला
आज भी खिलेगा कमल अगर
कीचड़ सके खिला ।

■

16.07.2009

# रेती की दीवारें

दूर-दूर से अलग-अलग हम बसे
बहुत दिन हुए हँसे

नींदों में भी दीखा करतीं
गीली रेती की दीवारें
पूरब वाले घर की छूटी
टूट-टूट गिरती शहतीरें

मन से मन की साँसें कुछ-कुछ कसे
बहुत दिन हुए हँसे

थोड़ी आमदनी की बातें
सहज घरों सें बाहर होतीं
कहीं दुपहरी थक जाती है
खुशियाँ पाँखें आँख भिंगोतीं

पँखुरी पर लिखे दिन होते अब से
बहुत दिन हुए हँसे

सीढ़ियाँ उतरते बादल के
संग-संग चलते पैदल ही
हरी चूड़ियाँ लाल रिबन में
सज जाते सब लय-सुर यों ही
आँखों बसे ये गीत कहें सबसे
बहुत दिन हुए हँसे ।

■

19.08.2011

# केवड़े की पंखुरी

रंग किरनों के लिये छोटी नदी लहरी
घाटियों के दलानों में गूंजते हैं सुर

पहले नहाकर ओस में
लौट आयी रात रानी
मुसकियों में बदलते हैं
रंग जैसे लाल-धानी

लाल रंगों में डुबोकर पाँव जो ठहरी
बाग-वन से तितलियों के पंख आते उड़

केवड़े की पंखुरी में
लिपटे हुए कई सपने
जगा जाते आँख में हैं,
रूप के सौ रंग अपने

घर हुए दालान की साँसें हुईं गहरी
लगे, गई लकीरें हैं हथेलियों की जुड़

सीख लेता मन विपत में
एक कोमल नयी भाषा
रंग में खुशबू मिलाता
हथेली में बांध आशा

कुहासे को चीर आँख में धूप की तरी
लोकने में पंखुरी को मन हुआ सेनुर ।

■

23.09.2011

# खुशियाँ तितली हुईं

आँख में भरती लौ खुशियाँ तितली हुईं
देखते ही रहे जिन्दगी लगती नई

बहुत दिन हुए
चैन से बैठते
बाँसुरी बजा
धुनें फिर उठाते

मूढ़ी में झिलिया की लय बनी हुई
सुख में उतरती हैं पुतली में धुनें कई

खुद टिफिन खोल
खाना दुपहर में
भाग-दौड़ फिर
ले आना घर में

हथेली में हवा की लौ में बँधी हुई
साँस रंगों में नहाकर गंध हो गई

बन कर घोड़े
घर में दौड़ हँसे
दिन बड़े सरल
फूलों से विकसे

हरी दूब की खुशबू मन में बुनी हुई
लालसा नयन की हीरे की कनी हुई ।

■

25.09.2011

# खुलकर हँसी हवा

नदी किनारे आने का वादा
आई नहीं हवा

उड़ती रही धूल और
अनमनी हुई लहरें
बहुत चुप सूखते पत्ते
इन डालों पर ठहरे

गुस्सा में थी और कहीं ज्यादा
पंख रंगती हवा

कितनी बची हुई वहाँ
कागज की ये नावें
रेत के घर फूल खिले
तब के हँसते वादे

रंग उजला सा बहुत ही सादा
मौन साधे हवा

पुराने पुल पर बैठी
छोटी सी जो चिड़िया
खोजती है पानी में
नील रंग का पुड़िया

बदल गया पिछला अभी इरादा
खुलकर हँसी हवा ।

■

26.09.2011



शान्ति सुमन

# आपसपन की बातें

अपनापन ही है तो
सारी दुनिया चलती है

कच्ची मिट्टी के छोटे घर
गाँवों में होते
नींद बहुत आती उनमें
अपने जब होते

आपसपन की बातें
ही जीवन भर चलती हैं
अनदिख हों अगली सुबहें
काले कुहरों से
सभी पल भर रिश्ते-नाते
बनते लहरों से

कोमलता पर मन की
अलख जगाये चलती है

जीवन में होंगी खबरें
होगी घटना भी
आँखों में उतरेगी लय
लाल किंशुकों सी
समय रुका रुक जाये
आँख दूर तक चलती है ।

■

25.11.2011

शान्ति सुमन

# मन की सुबहें

उगा हुआ है सूरज
लेकर लाली अपनी
खोज रहे सब अपने–
अपने मन की सुबहें

गीतों की है कमी नहीं
खलिहानों में
पुल कितने बने खुशी के
पहचानों में

पायल-पनघट की वे
मीठी खनकें अपनी
लोक धुनों की मीठी
तानें वे अकह कहें

बदबू, सीलन, शोर, धुआँ
सब दिखते हैं
चटख रही कलियों पर
कुछ लिखते हैं

चहक रही गौरैया
धुनें सजाकर अपनी

बोझ उतारें मन से
इसके ही संग रहें

आते तो रहते ही हैं
फिर दिन उजले
पाँखों पर लिखती खुशियाँ
पल सब पिछले

हँसी में बचती नमी
है भिगो रही अपनी
नदियों में जीवन की
लहरियों से हम बहें ।

■

25.11.2011

# दीखेगी ही लाली

बनते हैं मकान ईंट-पत्थरों से ही
कोस रहे सब इतने गांवों-शहरों को

कुछ भी कहते हम तो
सब देखा-देखी में
नकल किसी की करते
लेते अनदेखी में
दुखते मन से कोसें भरी दुपहरों को

दीखेगी ही लाली
होठों पर जब होगी
लोग मिलेंगे जैसे
खुशी जरूरत होगी
कब शीशम के पत्ते ढँकते नहरों को

लोग सहज बाजारों
में मिलते कामों से
जिसकी जैसी बनती
है सुबहों-शामों से
माँझी बढ़ते नहीं पूछकर लहरों को ।

■

26.11.2011



शान्ति सुमन

# छोटी खुशी

गाँव में तकलीफ है तो है खुशी

धुआँ, कुहरे हैं मगर हरियालियाँ भी
धूप की जाली किरन की बालियाँ भी
धार नदियों की जल अथाह पोखर के
खड़ी जल में हँसी-खुशी की उर्वशी

शोर-शराबों और आवाजाही में
दिनों बंधे कचहरी और गवाही में
ऐसी भरी लपट खेत-खलिहानों में
डोरी बंशी की मछली है फँसी

खुशबू हवा में गेंदा के फूलों की
राह में बतियाती पाँत बबूलों की
सपन धूप-छाँह में पलते आँखों के
लिखते भीतर अपनापन की हँसी

छोटी खुशी बड़े हौसलों के घर में
लोकगीत पहन उड़ती चिड़िया पर में
अड़हुल-करविल मिल जहाँ गलबाँही दे
गाँव में है गीत की कागज-मसी ।

■

26.11.2011

# केश खोले घाटी ने

चुप रहो नदी नहीं सागर भरोसे
उड़ रहे अबीर नेहों के करों से

दुख अपनी आँख में ही दीखता है
रेत पर लिखकर कोई सीखता है
पग भरता घाट कोमल साँस जैसे
कब जी पाता पेड़ कटकर जड़ों से

आँख हरी चूनर पहनकर हँसेगी
देख सुनकर न सही कुछ यों लगेगी
केश खोले घाटी ने मेघ जैसे
लगा तट हरियाली के सुर परोसे

रितु आयी नेह की बरखा समेटे
तरुशिखा पर नाची फूही लपेटे
चलो, चुन लो राह एक भी कहीं से
अँकवार लो दिन को अपनी हँसी से।

■

03.08.2012

# रंगहीन नहीं होगी

अकेली तुम नहीं रहो पंखुरी
संग तुम्हारे हरियालियाँ हैं

मौसमी फूल तुमको दुलराते
चंदन लगाती धूप तुमको
कासवनों की उजली छुअन लिये
आती हवा देखने तुमको

रंगहीन नहीं होगी फिर कभी
खुशी की ये परछाइयाँ हैं

रात भर चाँदनी धुली छतों पर
सोनपंख चिड़िया आ गाती
ताड़ के चौड़े पत्तों से उतर
उजली धूलें नदी नहातीं

पठार की सूर्यमुखी साँझों में
रंग जाती ये तनहाइयाँ हैं

बैजनी चिड़िया को भला लगता
अकेले कभी यों बतियाना
दिन दुपहर में कनेर की शाखें
हँसी में जोर-जोर हिलाना

सोनी पंखुरी तुम लय इमन की
बजाती ये जो शहनाइयाँ हैं ।

■

13.08.2012

# दिनों के पन्ने

तुमही हो, तुम ही हो मयूरी
पहचानी नहीं जाती

इस शिखर से उस शिखर तक
बात करते नही थकती
सुबह जैसे गुनगुनाकर
दिनों के पन्ने पलटती

एक अंगिया देह का गहना
नयी खुशबुएँ जगाती

समय की परछाइयों में
बँधती हुई नयी हँसियाँ
देखने पर दीखती हैं
पुरानी कीमती मणियाँ

ओस जानती धूप का तपना
आँखें अपनी बचाती

घाट पर जब नहाती थी
सुबह में पुरवा अकेली
एक पूरी खुशी पहने
पीठ पर चलती नवेली

नाम चाँदनी के लिखा सपना
स्वरों के पुल बनाती ।

■

07.08.2013



शान्ति सुमन

# फूलों में भाषा

नदी प्रेम की
तुमसे चलकर मुझ तक बहती

डालों से हटकर चुनती है
बया यहाँ तिनके
रोशनदानों पर ही अब हैं
राजभवन इनके

दोने भर के
फूलों में ही भाषा पलती

जब-जब किरनों में सूरज की
आकाश नहाता
पलकों पर बैठा मौसम का
गीत नया गाता

अंगों में ये
पुलकों की बूँदों सी रहतीं

रंगती जहाँ खिलती हँसियाँ
झरना मुख दिन को
छोटे-छोटे सुख की गठरी
में बाँधे मन को

हों उतर रही
पुरइन पर जल—मोती लगतीं ।

■

24.08.2013

# जल अँजुरी में

जिन्दगी उतनी बुरी नहीं,
जितनी यह दिखती

अब भी गाती है कोयल
फागुन के बागों में
मीठे से रंग अभी भी
घुलते है फागों में
बिखरी सी है यह भले गीत–
कविता भी लिखती

छाँह भली उस आँचल की
मिलता है जल अँजुरी में
वही तान–आलाप कंठ
में झूमर-कजरी में
धरती जितनी उमर दुआएँ
माँ मन में रखती

दो दाँतों की हँसी भली
है महमह रातों में
गमके हैं खूब मोगरे
इंगूरी बातों में
नीड़ों से चिड़िया सुबहों की
है धमक परखती ।

■

- 25.11.2013

# बुनते साँझ-सबेरे

दिन की नींद रात का जगना
कोई तुमसे सीखे

डाली पर कचनार गीत के बारे में
बतियाता हर बार गीत के बारे में
देखा करता तुमको मनकी आँखों से
होता है बेजार गीत के बारे में
दूबों पर ओसों का कँपना
इतना हरदम दीखे

कैसे लगे हिसाब काम कितने घर के
खेत-खाद में हाथ बँटाये जीभर के
कब-कब लीपा आंगन पीली मिट्टी से
कितने बोझे हुए धान के गहबर के
संग किरन के ऊंघ चढ़ना
बैठी सहज झरोखे

आंचल गाये देशराग तन पर तेरे
दुपहर के आराम छंद बुनते घेरे
और नहीं होता सुख इससे अधिक कहीं
जीने का मतलब बुनते साँझ-सबेरे

उन गीतों को सिरजना
लगे धूपों-सरीखे।

■

28.11.2013

# संगीत समय है

गीतों में सुरभित लय है
खेतों में फसलें हैं जल से

मछली सेंवारों से कहती
मन की तकलीफें
साँसों बसते उत्सव जल-बिन
होते हैं फीके
कैसा संगीत समय है
धुन आती मीठी कल-कल से

नीले फूलों की नदियों में
लगा रहे गोते
उससे पूछे कोई पानी
के सुख क्या होते
कीचड़ भी है तो जय है
खिलते उजले फूल कमल के

समझ रही है अब पानी को
पड़ोस की लड़की
हँसकर चिड़िया की बतलाती
हो काकी बड़की
रेती भीतर जलमय है
वरना तो मर जाती जल के ।

■

28.10.2013



शान्ति सुमन

# हवा घाटों की

समय कहे कुछ पहले
जल की धारा कहती है

फूलों की खुशबू तो
आँखें हैं मौसम की
बात हवा घाटों की
करती है शबनम की

चिड़िया को है पता
सब कुछ तो वह सुनती है

आसमान रंगेगा
सूरज होकर पहले
कोई युवा तपस्वी
होगा काँवर पहने

घर-घर जाकर खुशियाँ
रेशम-झालर बुनती हैं

बोझ उठा मिहनत की
जैसे गाती बाँहें
जैसे छोटा बच्चा पग
रखता दायें-बायें

बरसे दिन से फूही
सावन सावन करती है ।

■

06.12.2013

# छाँहवाले दिन

धूप वाले दिन बहुत देखे
छाँहवाले दिन कभी आये हमारे घर

खिड़कियों पर बसा करतीं
लाल पंखों की तितलियाँ
खुशबुओं को उड़ा चलती
हरी धूपों की बदलियाँ

टहनियों के हरापन देखे
मछलियाँ धारों की कभी आये तटों पर

हाथ में जब हाथ रखते
दिखती लकीरें हाथ की
उजले चमकते पसीने
कहते कहानी माथ की

चारों तरफ चल रहे रास्ते
गली के उस पार तो जाएगा यह सफर

आज तक तुम रहे कहते
सुनती मैं, नाचती खुशी
संदली छुअन की खुशबू
गाँठों में आज तक बसी

नदियों, फूलों से जानेंगे
सूरज उतरेगा कब पूरब देहरी पर ।

■

11.12.2013



शान्ति सुमन

# घर की ईंटों में

संत नहीं थे तुम
सहज थे नहीं अकेले में

लगाव था जिसको उतना
अपने बच्चों से, घर से
वह मीठा प्यार सहज सा
नहीं गिरा कभी सिर से

दूर नहीं थे तुम
कभी घर में या मेले में

दिखती घर की ईंटों में
नमी तुम्हारे श्रम की
गेंदा की पंखुड़ियों में
खुशबू नेह की गमकी

कहा किये थे तुम
नेह को बुने उजाले में

धारा सहज पहाड़ों से
नदी में जाकर मिलती
इन्द्रधनुषी रंगों में
सुखों के जीवन बुनती

खुश उतने थे तुम
दूर ही रहते रेले में ।

■

14.12.2013

# दादी थी तो

दादी की विमल पराती
और नचारी वाली भोर

नहीं गूँजता कानों में
अब तो 'कखन हरब दुख मोर'

एकादशी का उद्यापन
रविवासर के वे उपवास
कभी नहीं होती चरचा
चुप-चुप ताके नीम-पलास

अंधड़-पानी में भी तो
दिखता नहीं पुराना जोर

दादी की घंटी की धुन
गूँजने से मिले प्रसाद
पढ़ा नही तब दादी के
माथे का गहरा अवसाद

दिखते चिड़िया को भी थे
दादी की आँखों के लोर

दादी थी तो घर जैसा
बड़ा लगता था अपना घर
अब तो कागज की नावें
तैरती रहती इस जल पर

दादी ने बाँधीं गिरहें
कितनी जड़ गिरहों को तोड़ ।

■

15.12.2013

# आंगन वाले इन्तजार

छत पर गई नहीं यह देखा
दिन कैसे बीत गये
सूखे कपड़े थे ओसों में
फिर से वे भींग गये

घर-बाहर की आपाधापी
के दिन बड़े कठिन से
मगर जिन्दगी शुरू हुई थी
तब तो बड़े यतन से

मलिन हुए पौधे गमले के
पानी ही रीत गये

तस्वीरों की धूलें कब से
झाड़ी ही नहीं गईं
देहरी की कहा-सुनी कभी
अनहोनी नहीं हुई

आंगन वाले इन्तजार थे
कब के वे जीत गये

गुमसुम नदी चाँदनी रातें
मन फिर अनमना हुआ
भाग-दौड़ अब दिन-दिन भर की
सुर ही अधबना रहा

दिन भर फूली नयी केतकी
पर सुर विपरीत गये ।

■

19.12.2013

# किताबें धूपों की

तुम फूलों के नाम लिख रही
फूलों से बेहतर हो तुम

आया है बसंत पूछता
हुआ तुम्हारा नाम
रक्त कमल के पोखर में
बुनते रंग उपमान

तुम खुशबू के पास दिख रही
खुशबू का उत्तर हो तुम

झलमल कमल की बूँदों से
सुलगता है कचनार
देख, कहाँ से ये फिसलनें
बना देतीं रतनार

बिक रहीं किताबें धूपों की
आँखों सी सुन्दर हो तुम

हवा बनाती पुल नदी पर
रंगों में सनी लहर
दूबों में क्रोशिया बुनती
किरन टाँकती झालर

अनदिख रही ऋतुकथा यहाँ
लिखतों के अक्षर हो तुम ।

■

03.01.2014



शान्ति सुमन

# नरम हथेली पर

रंगों में है घुलती खुशबू
खुशबू में फागुन के बादल
नरम हथेली पर नींदो की
बजाते मेंहदी के मादल

पंखुड़ियों की देहरियाँ
धूपों का आना-जाना
पंख खुजाती चिड़ियों का
आपसपन में बतियाना

गूँजते दिशाओं में रहते
रथों के हवा के कोलाहल

हरे गाछ पर केले के
उन पीले अंगोछे में
हल्दी के अनुराग लिये
दरवाजे के पीछे में

बुनते 'ललित-ललाम' आज में
जागते रहे कौंधों में कल

सोना-रूपा दे चिड़िया
लाई है उजास घर में

शिशिर-शीत के गालों पर
खुशियों की लगी मुहर में

आपस की लेनी-देनी में
छलके जाते कलशी से जल ।

■

02.01.2014

# उपमानों में

उपमानों में ढूँढ़ रहा हूँ
पर तुम तो इनसे ऊपर

माना खुशबू बाँटा करते
फूल दिनों में, रातों में
खड़े भींगते बरसातों में
रस भरते हैं बातों में

आपसपन की बड़ी परिधि में
तुम हो खुशियों भरी खबर

गीतों की उर्वरा भूमि सी
वन-हिरनी की छाया सी
खुशियों की मधुबनी कला-सी
जल की झिलमिल काया सी

कच्ची दीवारों को थामे
घर हो तुम तुममें है घर

बंधे हुए सुख के आंचल में
बँधते हैं रचाव घर के
दो ईंटों के बीच जुड़े हैं
घुलते नेह-गीत सर के

माथे का सिन्दूर कवच ले
लड़ती तुम हो कठिन समर ।

■

22.12.2013

# बहुत उदास हवा

कस्तूरी तो साथ ले गये
जंगल-जंगल ढूँढ़ रहा मन

रोशनदानों पर आ चिड़िया
खिड़की से है बातें करती
बहुत उदास हवा इस घर की
वैसी की वैसी ही रहती

लगता जैसे घर का मुखिया
तोड़ चला है घर का बंधन

बड़ी अनमनी सी लगती है
धूप भली इस घर की छत की
फर्क लगा है दिखने जैसे
पहचान मिट गई हो रितु की

ठहरी-ठहरी दौड़धूप में
जलतरंग भी मन का निःस्वन

आपस में कुछ कहते-सुनते
तुलसी-नागफनी के पौधे
दुख ही दुख को टोक रहा है
बिन बादल के बिजली कौंधे

बिन रहते भी रहने जैसा
सींच गया जो घर भर के मन ।

■

24.12.2013



शान्ति सुमन

# पीतल के गहने

ऐसा ही जीकर देखेंगे
दुख को कर भीतर देखेंगे

आँखों में भर लेंगे हम तो
यह मामूली खुशी कहीं भी
आँधी नहीं उड़ा पाती है
घास उगी तो उगी कहीं भी

बाहर बेचैनी कर देंगे
जन-जन को समरस कर देंगे

नींद नहीं है जिसको हासिल
मोरपंख उसके सिरहाने
परदे समेट खिड़की के
गाये हवा फसल के गाने

सीढ़ी दर सीढ़ी उतरेंगे
धूपों के आखर सिरजेंगे

थोड़ी सी उम्मीद बची है
फिर से कोयल भी कूकेगी
हरियाली का आँचल थामे
राहों बीच हवा रोकेगी

पीतल के गहने दमकेंगे
अपने सारे सुख सँवरेंगे ।

■

08.02.2014

# हवाओं की आँखें

ऐसे ही दिन थे
रंग जब मौसम के बदले

गायब रहती धूप और
कलियाँ खिलने को आकुल
होते सुबह हवाओं की
आँखें भी हैं जाती खुल

नदियों के जल थे
मिले कभी न इतने उजले

नये दौर की चिड़ियों को
एक नयी चहक मालूम
तब तो खिड़की से बागों
तक मची हैं उनकी धूम

फूलों को डर थे
कौन खिलना चाहे पहले

अपनी जिद की उमस बढ़े
यह भी कितना हुआ कठिन
हवा आजकल इसीलिये
तो रहती है गिनती दिन

उसके सपने थे
सतह पर आँखों की बिछले ।

■

11.02.2014

# रेशम सी कोमल

मौसम को नहीं देखती चिड़िया
रखती उड़ान पर अपनी आँखें

कितना भी हो पतझड़ उदास
फूलों का रुका नहीं खिलना
आँधी हो, ओले हों सबसे
होता है दूबों का मिलना

जाते ही उन झंझावातों के
हैं तन जाती सीधी ये शाखें

गाली देते हुए समय को
हम अपनी पहचान मिटाते
खुद के किये और में रखकर
आँखें अपनी रहे बचाते

दिख जातीं भीतर से नीड़ों के
रेशम-रेशम सी कोमल पांखें

नदी किनारों से बंधकर है
पूरी उमर नेह से जीती
मन की कोमलता लहरों पर
लिखती हुई कथायें बीतीं

लगावों को बन्द करें इनके
वे नहीं बनी हैं अभी सलाखें

■

14.02.2014

# असह धूप में

कभी किनारे पर बाहर आ
जल की सब रंगीन मछलियाँ

जल का जीवन भले लुभाता
तुमको सपने नये दिखाता
पर जल के बाहर का जीवन
तो सपनों से अलग सिखाता

महकी-महकी असह धूप को
सहती मन से तपी पँखुड़ियाँ

लहरों को जब दुलराती हैं
कोमल कर से नरम हवायें
तुमको भी लगता ही होगा
आकर कभी गले मिल जायें

दूबों की दुखती उसाँस में
दिखीं बहुत कमजोर पसलियाँ

तुम भी नाच भूलती होगी
घर परिवारों की चिन्ता में
छन्द कहाँ से जुड़ पाएगा
टूटी लयवाली कविता में

फिरकर आती नहीं दुबारा
जातीं जो हर बार लहरियाँ ।

■

15.02.2014

# गिनते दिन

दूर-दूर हम रहे मिले बिन
गिनते दिन दो-चार
तब तो ऐसा करते फिर भी
हुए न थे लाचार

खेत उपजता तो भी
कुछ कितना देता
उजड़े गाँवों से यह
शहर मिला देता
लगता आकर यहाँ न होंगे
हम बेबस बेकार

यहाँ लीलते जाते
काँटे लोहे के
आगों में झुलसे हैं
माने दोहे के
हमें नहीं कहलाना कोई
महलों का बेगार

पहचान पत्र अब तक
बना नहीं अपना
गैलन-तेल किरासन
सपने का सपना
बिजली हुई महाजन नाचे
नखरे पर बाजार ।

■

21.07.2011

# सेंवार-शंख-सीपें

सुनते रहे हैं पेड़
नदी कहती रही कथा

चिड़ियों को भले पता
इनकी अनबन की
पेड़ ने तो नहीं की
बातें बेमन की

सुनहरी रोशनी में
जुड़ती है कोई तथा

जालों के साथ दिखे
जब से मछुवारे
सेंवार, शंख-सीपें
दिखते मनमारे

आसमान के तारे
अगोरते रहे प्रथा

हवा बहे मौसम में
लाली भर जाये
अंगुलियों की अपनी
रेखा कस जाये

यही दिन कभी पहले
इतना सघन कठिन न था ।

■

14.02.2014

# हाथ के हौसले

हाथ के सारे हौसले
सँजोकर दिल्ली जाऊँगा
वहाँ शकरपुर में रहकर
किस्मत को अजमाऊँगा

अपनी बहन कुमारी कब से
घर में है बैठी
पीले हो पाये हाथ नहीं
माँ तब से रूठी

नहीं छोट भैया का मन
कभी लगता है पढ़ने में
कपड़े उसके बांध नये
संग अपने ले जाऊंगा

माँ के उठते ही खटिया से
पकड़ लिये बापू
कैसे गिनूँ कहाँ से घर तो
दुख का है टापू
बंजर पाथर हुए खेत से
सहज अब तो क्या पाऊँगा

मोती के बुन्दे लगते थे
आँसू आँखों के

जान गयी छोटी चिड़िया भी
जलती पाँखों से
आने वाली बाढ़ अभी
फूस की छान बचाऊँगा ।

■

24.09.2011

# बहुत दिन हुए

बहुत दिन हुए
साथ-साथ हँसे
चलो फूल के
पड़ोस जा बसें

भुने हुए चूरे में मछली तली हुई
आँखों में भरती लौ खुशियाँ तितली हुईं

बहुत दिन हुए
चैन से बैठे
धुनें केसियो
की फिर से कसें

अकेले टिफिन खोले खाना दुपहरों मे
आफिस की भागदौड़ ले आना घरों में

घोड़े बनते
पीठों पर लिये
बच्चों को सरल
कमल से विकसे

हरी दूबों की खुशबू साँसों में बुनती
हवा की धीमी लय आँचल बांधे सुनती
प्यार का नया
अलग नाम कहो
लहर नहीं फिर
पूछेंगे किसे ?

■

11.08.2011

# आँखों की लाली

खूशबू ने तो खूब चला ली
हर पल अपने मन की

खुशबू अब भागी फिरती है
मौसम के डर से

रात-रात भर जागी चिड़िया
की आँखों की लाली
सुबह शबनमी बूँदों पर है
किरनों की वह जाली

उपवन ने तो खूब मना ली
खुशियाँ इस अगहन की

खुशबू अब गाया करती है
चिड़िया के ही घर से

बीता करते हैं कितने दिन
इस आवाजाही में
लौट गये छन फिर-फिर आते
अब नयी गवाही में

धूपों ने तो खूब बचा ली
सब सुर-लय आंगन की

फूलों से अब घर भरती है
नयी पड़ोसन फिर से

पेड़ों की हरियाली लौटी
अब से इस सावन में
बाँटी हैं जाते सूरज ने
ये मणियाँ कानन में

चिड़िया ने तो छाँव चुरा ली
घिरने वाले घन की

सोनी अब जाया करती है
किंशुक पहन उधर से ।

■

19.11.2011

# फूही सुबह की

तीन दिनों के नाटक
अब तो हद ही कर दी है
यह रितु बड़की भाभी
के जैसी ही जिद्दी है

फूही सुबह-सुबह की
दुपहर की बूँदा-बांदी
घर से नहीं निकलती
काटती पाखियाँ चाँदी
हवा और बादल ने
मिलकर बोयी सरदी है

लगता कई दिनों से
आम बगानों का मेला
मूढ़ी झिलिया पर है
रीझता-ठहरता रेला
इधर जमा होती ये
सब बाजार की रद्दी हैं

इस मेले में सपनों
के दाम बहुत हैं लगते
महँगी हैं सब चीजें
बस अपने सपने सस्ते
कुहरे में सूरज ने
अपनी नींदें भर दी हैं ।

■

25.11.2011

# पीतल की कलशी

झूम बरसती बूँदें
धरती नेह पिरोती

हरियाली की चादर ओढे
गाता है बादल
मन में घुँघरू वाले बजते
हैं सौ-सौ मादल
पीठ दिये पुरवा को
धरती मोह सँजोती

पिछली बुँदाबाँदी देखते
घुटनों भर बरसी
पीतल की कलशी में मीठी
याद एक छलकी
धार तोड़ती मेड़ें
धरती पलक भिंगोती

बहुत दिनों से आसमान से
बातें नहीं हुईं
जाने कितनी गिरहें जो अब
खोली नहीं गईं
दिये जले कमलों के
धरती जब खुश होती।

■

04.12.2011



शान्ति सुमन

# छोटी-छोटी खुशी

एक बया फूलों की टहनी पर आ जाती है
अपने सुर में मीठा-मीठा मलय जगाती है

दर्द नहीं वे उसकी साँसे हैं
उड़ी हवा में जीवन-लय है
नरम मुस्कानी गंध बचाये
हरे पात का हिलना तय है
मंदिर के कलशों पर बैठी ओस नहाती है

दुख बया के गीतों की धुन है
अलग बात आँखें पुरनम हैं
वर्षा में भींगे तुलसी वन से
तन से, मन से वह पूनम है
अपनी पाँखों से पँखुरी की धूल बचाती है

जनमती चिन्ता है डालों की
भादो से उसके बचाव की
खुशी को अपनी समझ रही है
आँखों में अपने रचाव की

अपनी दुनियादारी को भी संग सजाती है
छोटी-छोटी खुशी संग ले हर पल गाती है ।

■

12.08.2012

# दोना में अड़हुल-सा

खिड़की से दलान हो आता
धूपों के कालीन बिछाता
दोना में सजता अड़हुल-सा
लगता घर अपना

जब भी आये सरदी-गरमी
सबके लिये जगह है
ऊपर से ही दिखती रहती
खुशबू भरी सतह है

मिट्टी की कलसी में हिलता
जल-जैसा सपना

खड़ी करविलों से कनरे तक
गाती इमन हवायें
धागों सी लिपटी आतीं वे
देती नरम दुआयें

होते सुबह शुरू परदे का
जलतरंग बजना

खेतों के सिवान हरियाली
की वह आवाजाही
मन की बातें सब अपनो से
कहते नहीं मनाही

चिड़िया दिखा रही बच्चों को
पेड़ों पर झरना ।

■

06.06.2007

# धार नदी की

नदियों की जलधारा सी
लहरों पर बिछली सी
तुम इस जन्म में पिछले
पुण्यों से निकली सी

बार-बार मौसम कोई
जाकर फिर आ जाता
पोखर के तट पर कोई
नया राग भर गाता
दौड़ती हुई चिड़ियायें
बालू पर फिसली सी

भागती हुई जिन्दगी
आँखों की धुन पर ठहरी
समय की बाँधती गिरहें
धार नदी की लहरी
हुई साँझ खेत लाँघती
नयी किरन पतली सी

घर तक पहुँचा वह बूढ़ा
हाँफ रहा हो जैसे
हिसाब जोड़ नहीं मिलता
थकता जाये वैसे
चम्पा बुआ ओढ़े कथरी
धूपों में फिर निकली ।

■

27.11.2013



शान्ति सुमन

# फूलों की खुशबू

कभी-कभी अनुकूल नहीं होता
यह मौसम पानी का
लगता हो आसमान तांबे पर
रंग चढ़ा चानी का

फूलों की खुशबू पड़ोस की
लड़की जैसी लगती
बहुत पास से गुजरेगी भी
हँसी दबाये रहती

सुनती है रेशमी कथा मन से
सच राजा-रानी का

दीख नहीं पड़ता पहाड़ पर
आधा सूरज जैसे
आधे कंठों की पुकार पर
मन ही भींगे कैसे

सपना बुनता शैवाल आँख में
सुरमयी सयानी का

खेल रहे बच्चे गलियों से
दरवाजा तक आये

कागज की नावें पानी पर
तिरते ही गल जाए

गूँजे गीत हवाओं में फिर से
मौसम रमजानी का ।

■

03.12.2013

# रंग की लय में

पेड़ हरे हो गये
गीत फूटे किसलय में

लेने लगी साँस जिन्दगी
होकर दुहरी
सुख के तिनके लिये चोंच में
चिड़िया उतरी
रंगी हुईं लहरें
गातीं रंग की लय में

बच्चों के हँसते होने की
वे आवाजें
सोनी धूपों की अँजुरी में
मन से ताजे
झण्डे हिलते रहे
नायकों की जय-जय में

कमने लगी खेत से घर की
दूरी फैली
चूनर भी अब नहीं दीखती
है मटमैली
अंगोछे के साथ उड़ा मन
तब से सुनील निलय में ।

■

06.12.2013

# केश झाड़ती लड़की

दिन तो शुरू हुए थे दिन से
बदल गये चलकर आगे

समय बीत जाता फूलों के
नामों को गिनने में
परीकथा जैसी ही कोई
निजी कथा बनने में

आते ही सरदी चिड़ियों के
संग-संग पोखर जागे

बाँसों की ताजा कोंपल पर
ओसों की बूँदों सी
अंधेरे में दूर चमकती
हिरणी की आंखों सी

कागज के कुछ टुकड़े जैसे
कुहरे इधर-उधर भागे

केश झाड़ती लड़की जैसी
थे धूपों के नखरे
सहज छोटी सी दिनचर्या में
फिर भी खुश थे निखरे

सुई भले चुभी उंगली में
थे उलझे कभी न धागे ।

■

16.12.2013



शान्ति सुमन

# हरियाली के जेवर

छंद और लय जीवन के ही
गीतों में ढलते हैं

पीले फूल पलासों के
जब रंग बाँटने लगते
हरियाली के जेवर ले
जामुन से हंसने लगते
पंखुड़ियों के इन रंगों में
नयन नये पलते हैं

तय है कब कौन बनेगा
नदी-नाव अगला मांझी
हवा बहेगी आएगी
पूरब से बदली-आँधी
गमकी गंधों की भाषा में
सातों सुर चलते हैं

मधुबन की उन हँसियों के
सुर आपस में मिले हुए
नहीं बीच में दीवारें
उनके अर्थ अनेक हुए
राहों के कचनार हुए से
हम दिन-दिन जलते हैं ।

■

15.02.2014

# सतहें हरी झील की

मौसम ने लिखा प्रेमकाव्य
धूपों ने लिखी रुबाई

जेठ की तपती धरा से
प्यार का अनुबंध मांगे
लौटती लहरों सरीखी
कामना सौंगध मांगे

खिलती साँसों पर फूलों की
खुशबू ने धुनें बजाईं

हथेलियों पर रेतों की
लिखते नाम नहीं थकते
तैरते सारस लहर पर
तटों पर मधुमास लिखते

सतहें काँपी हरी झील की
जैसे बाँसुरी बजाई

दिनों बाद कल बरगद ने
बातें की कुछ पखेरुओं से
तितलियों ने कथा लिख दी
आँख से तभी गेरू से

कैसे कहें कहाँ आएगी
बहनेवाली पुरवाई ।

■

18.12.2013
शान्ति सुमन

# रंगवाले सिलसिले

शाम होते हो गये हैं फैसले
एक होंगे पेड़-टहनी, जड़-तने

हवा जब से लगी गाने गीत मन के
खुशबुओं ने जुगाई है
नमी धरती की
जोड़ती है सभी सुख-दुख साल भर के
अधिक पहले से दिखी है
पीड़ परती की

लगे जुड़ने रंगवाले सिलसिले
मेड़ बाँटने के मन लगे कमने

गाँव से आई शहर में धूप उजली
देखती हरियालियों के
खूब से सपने
मलिन पाँव की मेंहदी अभी तो नहीं
नहीं उतरे हाथ वाले
कीमती गहने

धो रहे बेचैनियों को हौसले
लगी धूप जाड़े की अधिक तपने

बच्चों की प्रार्थना के बोल गूँजे
आ गई गंगा नहाकर
हवा अब जैसे
बूँद पहली मेघ की जैसे गिरी हो
फूटने को लगे आतुर
मोगरे कब से

धान के बीज ने पहली साँस ले
रंग डाले जुगाये सभी सपने ।

■

31.12.2013

# खुशियों के झालर

और दिनों की तरह आज का
दिन भी सहज-सरल है

हरी मखमली ओढ़े नदिया
चिड़िया के संग हँसती
अपने आसपास के लोगों
के संग उसकी बस्ती

खुशियों के झालर में बुनती
रही सुनहरा पल है

लगते हैं जब धूप पहनने
पात खजूर पेड़ों के
खुशबू बाहर तभी निकलती
उन बन्धन घेरों के

ईखों की साँसों पर छपता
आने वाला कल है

सुनता बातें समय सभी की
समझता अपने मन की
कातिक को हरदम रहती है
हरी आशा अगहन की

सपने में आती हरियाली
बता रहा मरुथल है ।

■

09.02.2014

# धान के रंग में

सूरज अटका हुआ तभी से
आम की बारी में
लुक-झुक घर से निकली लड़की
भींगी साड़ी में

आम और अमरूद बाग में
रोपे बाबा ने
कभी न टोका अंधर-पानी
और दिखावा ने

बन-ठनकर निकली बदली सी
नीली गाड़ी में

सहज नेह आँजे आँखों में
उतरी बस्ती में
धान के रंग में कनेर है
पूरी मस्ती में

खड़ी-खड़ी है धूप ऊँघती
लगी किवारी में

अब तो होती बात नहीं है
कंगन-पायल की
बीच राह में चल देती है
कथा नेह-पल की

निकली भी तो कहाँ रुकेगी
हवा कियारी में ।

■

28.12.2013

# नीचे गरम हवा

ऊपर-ऊपर गुलमोहर है
नीचे गरम हवा है

निकल पड़ी है चिड़िया घर से
बैठी नदी किनारे
उतर हवा पीपल पत्तों से
दिखती है मन मारे
जाने किससे किसको डर है
यह कैसी शिकवा है

खिलने और मुरझ जाने की
पीड़ा में आकुल से
फूल सदा बनते पीड़ा की
नदियों पर हैं पुल से
धरती तो बन जाती जैसे
जलता हुआ तवा है

दिखकर भी अनदेखा होने
के सौ बार बहाने
तरहथ की पँखुरी में सजते
सुर के नये घराने

इतनी लाल न पहले दीखी
जितनी अभी जवा है

कहीं 'लजौनी' की कलियों से
दिन की बूँदाबाँदी
छोटी गिलहरियों के पाँवों
में झलकी सी चाँदी

पाँवों में सज गया आज तो
फूलों का बिछुवा है ।

■

01.08.2012

# मन की खुशियाँ

असमंजस में दिखने लगते
हैं गाँव के लोग
खुशियाँ जब से घर में आईं
हैं बाजारों से

कपड़ों की रंगीन चमक में
मन के रंग उड़े
सम्बंधों के पतले धागे
दिन-दिन हैं उघड़े

अब बढ़ती है घर की शोभा
चीज हजारों से

अब न बटन में टाँकी जाती
हँसी कमीजों में
सिर्फ सफेदी सी दिखती है
अब तो चीजों में

कागज जन्म दिवस के अब तो
सजे न तारों से

बची रही हैं मन की खुशियाँ
थोड़ी आँखों में

वे आँखें फिर-फिर हरियातीं
मन की शाखों में

सजने लगती वे ही आँखें
तीज-तिहारों से ।

■

16.02.2014

# सूरज उगा नदी पर

चलो वहाँ धीरे से
फूल जहाँ पर महके
सूरज उगा नदी पर
उधर पखेरू चहके

कौन नहीं चाहेगा जी
इस कोमलता को जीना
खेत और खलिहानों में
इस जीवन-रस को पीना

जेठ गये आ-आकर
और पलीते दहके

जान और पहचान सभी
खोजेंगे कितने मौके
कभी समय से बही हवा
निकली नहीं इधर हो के

आया नहीं अतिथि वह
आज अभी जो कह के

कह थोड़ा अधिक समझना
अब तो है यही कहानी

अपने हिस्से की खुशियों
की कर लेते मनमानी

बीच हमारे रहते
तो रहे बहुत हटके ।

■

17.02.2014

# सुगंध भर लाना

बेला के खिलने पर आना
मन में, आँखों में,जीवन में,
सपने में सुगंध भर लाना

अब तक तो है रही तपाती
जेठों के मरुथल की रेती
कितना भी सींचे जल इसको
मरहना हो सालती खेती

घर, घर के बाहर उपवन में
पलते हुए छंद सुर लाना

पाखी उड़ पीपल टहनी से
फुनगी पर जा अनकहनी से
हिलती छोड़ गया वह जिसको
उसका दुख सुनता तटिनी से

फसलों को छू नील गगन में
कोई प्रेम-कथा फिर लाना

मिट्टी के जेवर से होते
कुम्हारों के बेटे-पोते

साँसों पर रख शहनाई सी
दिन को अगरु धूप से धोते

सपनों की नावों के दिन में
छोटी हँसी-खुशी तिर लाना ।

■

06.03.2014

# छू लो आसमान

छू लो आसमान जितना भी
बेटी, करो कोशिशें

पहले लाँघो देहरी
फिर निकलो आंगन से
सूर्य हथेली खोले
ताक रहा है मन से

निकलोगी जब राह मिलेगी
चिड़िया खूब हँसे

जीकर प्रतिबंधों को
जानो खुली हवा को
लहरियों की नदियों की
गेंदा, लाल जवा को

पहले भी तो अपने ही थे
मिलते मौसम सबसे

बार-बार पढ़ो खुद को
अपनी ही आँखों से
बया सेती अपने को
अपनी ही पाँखों से

है मिला आज तक कमल नहीं
कीचड़ में बिना धँसे ।

■

16.06.2014



शान्ति सुमन

# तुम लिखती हो

तुम पढ़ती हो धूप-हवा को
बच्चे अपने तुमको पढ़ते

तुम सजिल्द खुलती किताब हो
अक्षर-अक्षर है पहचाना
सरूप-रंग-रस की वर्षा में
फसल-फसल अगहन बन जाना

तुम गुनती हो रामचरित को
बच्चे अपने तुमको गुनते

आकर पी जाता है कोई
सूखी रहती नदी गाँव की
बादल भी उमड़े जब बरसे
खोज हुई फिर उसी नाव की

तुम सुनती हो ओस-गीत को
बच्चे अपने तुमको सुनते

लहरों से बतियाती रहना
तुमने 'भनसाघर' में सीखा
अपना सफर शुरू करने में
पत्थर-पानी सबको देखा

तुम लिखती हो जीवन-रण को
बच्चे अपने तुमको लिखते ।

■

16.06.2014

# लय हरापन की

लौटती है जिन्दगी में
नयी लय हरापन की

तोड़ देती हैं हवायें
हरी-भरी नई टहनियाँ
कौंध जाती दिशाओं में
आग बनकर सौ बिजलियाँ

नहीं गूँजती धुन कोई
ओस जैसी इमन की

हैं बाँध लेती गंध को
नील-बैजनी पँखुड़ियाँ
चमकती नहीं पानी में
उजले शंख सी मछलियाँ

कोंपलों में शेष रहती
जिद फिर नये सपन की

नाचती कभी नींदों में
आँख की भीगी पुतलियाँ
छींटती बीज आशा के
धूप-हवाओं की परियाँ

जुड़ती कथाओं में कथा
रचती है जीवन की ।

■

07.08.201



शान्ति सुम

## शान्ति सुमन/आत्मवृत्त

**जन्म :** अनंत चतुर्दशी 1944/**शिक्षा :** एम.ए., पी-एच.डी.

**प्रकाशित : गीत संग्रह**—ओ प्रतीक्षित-'70, परछाई टूटती-'78, सुलगते पसीने-'79, पसीने के रिश्ते-'80, मौसम हुआ कबीर-'85, तप रहे कँचनार-'97, भीतर-भीतर आग-'02, पंख-पंख आसमान-'04 (चुने हुये एक सौ एक गीतों का संग्रह), एक सूर्य रोटी पर-'06, धूप रंगे दिन-'07, नागकेसर हवा-'11, मेघ इन्द्रनील-'91, (मैथिली गीतों का संग्रह), तप हरापन को-2014/ **कविता-संग्रह**—समय चेतावनी नहीं देता-'94, सूखती नहीं वह नदी-'09/**उपन्यास**—जल झुका हिरन-'76/ **आलोचना**—मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य-'93/ **सम्पादन :** 'सर्जना', 'अन्यथा' (मुजफ्फरपुर), 'भारतीय साहित्य', 'कन्टेम्परेरी इंडियन लिटरेचर' (दिल्ली), 'बीज' (पटना), देश-विदेश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित। देश के विभिन्न आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केन्द्रों से गीतों की रिकार्डिंग एवं प्रसारण। गणतंत्र की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ। गणतंत्र की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि-सम्मेलन (दिल्ली) में संस्कृत कविता का हिन्दी में गीतात्मक अनुवाद।

''कामायनी'' का मैथिली में अनुवाद-2013 (साहित्य अकादमी)/**सम्मान और पुरस्कार:** बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से साहित्य-सेवा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कविरत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत, अवन्तिका (दिल्ली) द्वारा विशिष्ट साहित्य-सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से विद्यावाचस्पति सम्मान, हिन्दी प्रगति समिति द्वारा भारतेन्दु सम्मान। इनके अतिरिक्त नारी सशक्तीकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा सम्मान एवं विन्ध्य प्रदेश से साहित्यमणि सम्मान। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'साहित्य भारती' का सम्मान (2005) तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'सौहार्द सम्मान'' (2006) से सम्मानित एवं पुरस्कृत। **आलोचकीय मूल्यांकन :** शान्ति सुमन के गीत एवं उनकी गीतधर्मिता का अध्ययन-विश्लेषण करते हुए पाठकों, समीक्षकों एवं विद्वान आलोचकों के आलेखों की दो पुस्तकें प्रकाशित—1. **'शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि'** (सम्पादक—दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश') एवं 2. **'शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प'** (सम्पादक डॉ. चेतना वर्मा)/**विशेष :** पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय की अंगीभूत इकाई)/**सम्प्रति :** स्वतंत्र रचना-कर्म/**स्थायी संपर्क :** मीठनपुरा, वी.सी. गली, क्लब रोड, रमना, मुजफ्फरपुर—842002 (बिहार), दूरभाष : 0621-2270895/ **वर्तमान सम्पर्क :** डॉ. शान्ति सुमन, द्वारा श्री अरविन्द, 2 कैजर बंगला, कपाली रोड, (कदमा सोनारी लिंक) कदमा, जमशेदपुर-831005, झारखण्ड।

मो.नं.—9430917356

Rs. 250.00

**समीक्षा प्रकाशन**

दिल्ली/मुजफ्फरपुर